

राज्य और यौन हिंसा

दण्डमुक्ति को चुनौती, न्याय की माँग

राजकीय दमन और यौन हिंसा के खिलाफ महिलाएँ
द्वारा जारी रपट
जनवरी 2013

विषय सूची

प्रस्तावना	3
नक्सल-विरोधी मुहिम का खामियाजा: सोनी सोरी	7
नक्सल-विरोधी अभियान की शकल में छापे और बलात्कार: आरती माँझी	16
जानकीबाई का हिरासत में बलात्कार: रक्षक ही भक्षक	23
बदले के रूप में हिंसा: पारदियों को अपनी 'आपराधिक' पहचान का खामियाजा भुगतना पड़ा	31
अन्याय का सामना: मीना खालको	36
न्याय को भ्रष्ट करते राजनैतिक स्वार्थ: शोपियाँ में सामूहिक बलात्कार और हत्या	40
खैरलांजी: उच्च जाति का प्रभुत्व बरकरार है	47
आफसपा के अन्तर्गत दण्ड से मुक्ति: थांगजम मनोरमा का बलात्कार और हत्या	51
निष्कर्ष	59
आगे की राह	64
राजकीय दमन व यौन हिंसा के खिलाफ महिलाएँ	68

प्रस्तावना

और मैंने हमेशा सोचा था: सबसे सरल शब्द
काफी होंगे। जब मैं कहूँ कि हालात कैसे हैं
सबके दिल तार-तार हो जाएंगे।

- ब्रेख्त

हम एक ऐसे ज़माने में जी रहे हैं जब कठोर शब्दों के भी वैसे असर नहीं होते जैसा हम चाहते हैं। हमें यकीन दिलाया जाता है कि कार्यवाही शब्दों से ज़्यादा ताकतवर व तेज़ होती है। कुछ साल पहले एक बहुत ही शक्तिशाली विरोध प्रदर्शन हुआ था जो गुस्से को प्रकट करने के अपने तरीके में अभूतपूर्व था। सन् 2004 में उत्तरपूर्वी राज्य मणिपुर की राजधानी इंफाल में असम राइफल्स के मुख्यालय के सामने बहुत सी महिलाएँ विरोध प्रदर्शन करते हुए निर्वस्त्र होकर तख्तियाँ लेकर सड़कों पर चलीं जिन पर लिखा था “भारतीय सेना हमारा बलात्कार करो”। इस ज़बरदस्त विरोध प्रदर्शन ने सुरक्षा बलों द्वारा औरतों पर की जा रही यौन हिंसा को दुनिया के सामने ला दिया, और साथ ही साथ, शासक वर्ग के नंगेपन पर से भी पर्दा हटा दिया। इस प्रदर्शन का कारण था असम राइफल्स के जवानों द्वारा एक युवती, मनोरमा का बलात्कार व क्रूर हत्या। पर दुखद है कि दुनिया के इस सबसे बड़े संवैधानिक लोकतंत्र के सत्तावर्ग को यह जोरदार प्रदर्शन भी नहीं हिला सका, ताकि दोषियों को सज़ा दी जाए और इन्साफ हो।

यह बात और भी खौफनाक है कि मनोरमा का मामला अकेला नहीं है। यह दस्तावेज़ ऐसे कई मामलों को प्रस्तुत करता है – देश के कई हिस्सों में सुरक्षा बलों द्वारा किए गए बलात्कार और हत्या के, या बलात्कार और कैद के मामले। कहीं ये बगावत से निपटने के नाम पर तथाकथित संघर्षरत इलाकों में हुए हैं, तो कहीं दलितों, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों को दबाने के लिए, सबक सिखाने के लिए भी घट रहे हैं।

यह रपट जड़ आँकड़ों से आगे जाकर महिलाओं के साथ घटी यातनाओं, बलात्कार और हत्या की घटनाओं का विवरण करती है। हरेक मामले में हिंसा की घटना और उन सरकारी एजेन्सियों की प्रतिक्रिया का वर्णन किया गया है जिनके पास कानून और न्याय को सुनिश्चित करने की ज़िम्मेदारी है। इस तरह यह उजागर होता है कि न्याय पाने के रास्ते में किस तरह की बाधाएँ आड़े आती हैं। इस दस्तावेज़ के ज़रिए हम हिरासती यौन हिंसा की घटनाओं में उभर रही समानताओं और पैटर्न को साझा करना चाहते हैं, चाहे यह हिंसा पुलिस या सुरक्षा बलों

द्वारा की गई हो या प्रभुत्वशाली जाति समूहों को दी गई ढील के कारण घटी हो। साथ ही राजकीय एजेन्सियों द्वारा ऐसी घटनाओं को नज़रअन्दाज़ कर देने, या दबाने-छुपाने, या भ्रमित कर देने, या यौन हिंसा के मामले को उलझा देने में और अन्ततः न्याय को पूरी तरह से नकार देने के प्रयास भी सामने आते हैं।

भारतीय राज्य का यह क्रूर चरित्र नया नहीं है। पिछले पचास सालों में भारत सरकार ने लोगों की लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को कुचलते हुए पुलिस, सेना, अर्द्धसैनिक बल और अन्य सुरक्षा बलों को खुली छूट दे रखी है। हाल के वर्षों में भूमि अधिग्रहण और प्राकृतिक संसाधनों के निजीकरण के खिलाफ किसी भी प्रकार के प्रतिरोध – चाहे वह शान्तिपूर्ण हो या नहीं – को दबाने के लिए नए कानून लाए गए हैं। इन कानूनों ने सुरक्षा बलों को व्यापक और मनमाने अधिकार दिए हैं। नतीजतन भारत के बड़े हिस्सों में जीवन और आज़ादी लोगों के लिए एक दूर का सपना बन गया है। ऐसा खास तौर पर उत्तर-पूर्व के राज्यों और जम्मू और कश्मीर में हुआ है जहाँ आत्मनिर्णय के संघर्षों को निर्ममता से दबा दिया गया है।

1990 के आसपास से शुरू हुए नवउदारवादी दौर में उत्खनन और विशेष आर्थिक जोन जैसी विकास परियोजनाओं के नाम पर हमारी आबादी के बड़े हिस्सों के जीवन और आजीविका पर राज्य का हमला बढ़ गया है। इससे बड़े पैमाने पर समुदायों को अपनी ज़मीनों, नदियों, जंगलों और दूसरे साझे संसाधनों से वंचित किया जा रहा है। हाशिए पर धकेले जाने से ये लोग इस व्यापक विस्थापन और लूटमार के खिलाफ अलग-अलग तरह से संगठित हो रहे हैं। इन दिनों तेज़ी से हो रहे कम्पनीकरण के प्रभाव में छत्तीसगढ़, झारखण्ड, ओडिशा, पश्चिम बंगाल और अन्य राज्यों में लोगों को उनकी ज़मीन से हटाने और उनकी आजीविकाओं को नष्ट करने में राजकीय हिंसा का उपयोग सुनियोजित ढंग से किया जा रहा है। ये सारी कार्यवाही तथाकथित “विकास” और “कानून व्यवस्था” बनाए जाने के नाम पर जारी है।

कई जगहों पर इन सरकारी प्रयासों के प्रतिरोध में खड़े जन-आन्दोलनों में महिलाएँ अग्रणी भूमिका में हैं। यह देखा गया है कि ऐसे में महिलाओं को खास निशाना बनाया जाता है और बलात्कार तथा अन्य तरह की हिंसा के प्रयोग से उनकी राजनैतिक भागीदारी को दबा दिया जाता है। इन इलाकों में महिलाओं के लिए बदतर होती जा रही परिस्थितियों से महिला कार्यकर्ताएँ होने के नाते हम बहुत चिन्तित हैं। महिलाएँ पहले ही आजीविका छिन जाने का विपरीत असर भुगत रही हैं। अब बड़े पैमाने पर सैनिक और अर्द्धसैनिक बलों की मौजूदगी के कारण वे यौन हिंसा का निशाना भी बन रही हैं।

ऐसा नहीं है कि जब हम ‘यौन हिंसा और राजकीय दमन के खिलाफ महिलाएँ’ के रूप में संगठित हुए तब पुलिस, सेना और अर्द्धसैनिक बलों द्वारा महिलाओं पर की जा रही हिंसा के पैमाने से हम वाकिफ न रहे हों। पर हम यह भी जानते थे कि यह हिंसा तब तक बन्द नहीं होगी जब तक उस पुलिस राज का खात्मा न हो जो भारत में फैलता जा रहा है। जातिवादी और साम्प्रदायिक ताकतों – खासकर हिन्दुत्ववादी ताकतों के साथ पुलिस का गठजोड़ विशेष चिन्ता का विषय है क्योंकि इससे न्याय की प्रक्रिया को और भी ज़्यादा खतरा है।



फोटो: <http://www.binayaksen.net/2011/01/global-day-of-protest-pune/>

इस स्थिति में तीन तरह की कार्यवाही की ज़रूरत लगती है: 1. विमर्श को बदलकर राजनैतिक रणनीतियों पर लाना और मुद्दों को हल करने के लिए सशक्त तरीके अपनाना, 2. कम्पनीकरण के विरुद्ध काम करना जिससे देश के बड़े हिस्सों में विस्थापन हो रहा है और जो बलपूर्वक प्राकृतिक संसाधनों पर लोगों के अधिकारों को छीन रही है, 3. किसी समुदाय के आत्मसम्मान को दबाने के लिए, डर बैठाने के लिए और सामान्य तौर पर उन महिलाओं को सज़ा देने के लिए की गई यौन हिंसा के खिलाफ कार्यवाही और न्याय की माँग करना जो सामाजिक प्रथाओं को आँख मूंदकर न मानती हों या जो यँ ही गाहे-बगाहे देश भर में आतंकवादियों, माओवादियों या बागियों की तलाश में घूम रही सुरक्षा बलों के सामने आ जाती हैं।

यौन हिंसा किसी भी सत्तारूढ़ संसदीय पार्टी द्वारा बनाई गई सरकार के राजकीय दमनकारी तौर-तरीकों में से पसन्दीदा हथियार बन गया है। चाहे युद्ध हो, साम्प्रदायिक हिंसा हो या सैनिक छावनी, महिलाएँ आसान शिकार बन जाती हैं। बलात्कार और हिंसा केवल कुछ बुरे लोगों द्वारा की गई करतूतें नहीं हैं परन्तु लोगों, समाज और राज्य द्वारा औरतों को सबक सिखाने के लिए योजनाबद्ध तरीके से इस्तेमाल किए जाने वाला एक हथियार है। अतः जब कोई भँवरी देवी अपनी अपेक्षित सामाजिक और जेण्डर की

भूमिका से आगे बढ़कर लोगों को बाल विवाह के विरुद्ध एकजुट करती हैं तो उनके साथ क्रूरता से सामूहिक बलात्कार किया जाता है। इसी तरह बस्तर में सरकारी बलों और बदनाम सलवा जुद्ध ने बलात्कार और दूसरी तरह की यौन हिंसा के ज़रिए आतंक मचा रखा है।

कश्मीर और उत्तर-पूर्व में सैन्यदल द्वारा अत्याचार के मामले बार-बार सामने आते रहे हैं परन्तु राज्य ने दोषियों को कभी भी सजा नहीं दी है। संयुक्त राष्ट्र की 1994 की एक रपट के अनुसार महज़ 1990 से 92 के बीच कश्मीर में सुरक्षा बलों द्वारा किए गए 882 बलात्कार के मामले दर्ज हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अनुसार 1990 से 99 के बीच सुरक्षा बलों द्वारा मानवाधिकार के हनन के 1039 मामले दर्ज किए गए – यानी औसतन 109 मामले प्रतिवर्ष। इनमें मासूम औरतों, बच्चियों और युवतियों का बलात्कार, डराना-धमकाना, अगवा करना, हत्या करना और साम्प्रदायिक हिंसा भी शामिल है। ये तो महज़ सरकारी आँकड़े हैं। असली आँकड़े तो इससे कहीं ज़्यादा होंगे क्योंकि ज़्यादातर मामले डर की वजह से या डराए-धमकाए जाने की वजह से दर्ज ही नहीं किए जाते। इन गुनाहों को करने वालों को कश्मीर और पूर्वोत्तर राज्यों में सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून (आर्म्ड फोर्स सस्पेंडिड एक्ट - आफस्प्या) , कश्मीर में

जन सुरक्षा कानून (पब्लिक सिव्युरिटी एक्ट), अन्यत्र अशान्त क्षेत्र कानून (डिस्टर्ब्ड एरियाज़ एक्ट) के तहत कानूनी संरक्षण मिला हुआ है। आपस्पा तो गम्भीर अपराधों के लिए ज़िम्मेदार सैन्य कर्मियों को कानूनी अभियोग से भी बचाता है।

पूर्वोत्तर राज्यों में सुरक्षा बलों को मिले विशेषाधिकार और सत्ता के कारण महिलाओं के शरीरों पर हमला जारी है। अकेले मणिपुर में शारीरिक छेड़छाड़ और बलात्कार की अनगिनत घटनाएँ दर्ज ही नहीं हुई हैं।

जो कुछेक महिलाओं ने मामले दर्ज किए हैं उनकी भी न्यायपूर्ण सुनवाई नहीं हुई है। सुश्री रोज़ (1974), नीलम पंचभइया (1986), ताम्फासना (1990), अहनजाओबी देवी (1996) ने अपने बलात्कारियों के खिलाफ कानूनी लड़ाई लड़ने की कोशिश की थी, पर ये सारे मुकदमे अपर्याप्त सबूतों के आधार पर खारिज कर दिए गए। हम यही उम्मीद कर सकते हैं कि देश भर के महिला संगठनों और नागरिक अधिकार संगठनों व समूहों के एकजुट होने पर ही इस बदतर स्थिति में कोई बदलाव लाया जा सकेगा।

चाहे उत्तर-पूर्व हो या कश्मीर, या नन्दीग्राम या सिंगुर या छत्तीसगढ़, बलात्कारियों और हत्यारों को सज़ा सुनाया जाना अभी बाकी है। 2007 में आन्ध्र प्रदेश के वाकापल्ली में 11 आदिवासी औरतों के साथ बदनाम ग्रे हाउंड पुलिस बल ने जघन्य सामूहिक बलात्कार किया। छत्तीसगढ़ में अर्द्धसैनिक बलों और सलवा जुद्धम के गुंडों द्वारा किए गए बलात्कार के कई मामले सामने आए हैं पर इनमें शिकायत तक दर्ज नहीं की गई है। हाल में छत्तीसगढ़ में शुरू किए गए ऑपरेशन ग्रीन हंट के दौरान कोबरा बटालियन ने 70 वर्षीय दुधी मुइया की छाती काट दी। लालगढ़ में, जहाँ 10 साल से सी.आर.पी.एफ. लगाई गई है, सुरक्षा बलों द्वारा अत्याचार और शारीरिक छेड़छाड़ की समस्या लगातार बनी हुई है। शारीरिक जाँच के नाम पर महिलाओं को नियमित रूप से शारीरिक छेड़खानी सहनी पड़ती है। सुरक्षा बल उन्हें अपने महिला होने को साबित करने के लिए यौनांग दिखाने को कहते हैं।

अतः राजकीय दमन और यौन हिंसा के कारण महिलाओं के निशाना बनने की घटनाएँ हर तरफ फैली हुई हैं। चिन्ता का कारण यह है कि न तो राज्य और न ही न्यायपालिका सुरक्षा बलों द्वारा महिलाओं पर किए जाने वाले इन वीभत्स हमलों को रोकने के लिए कुछ करती है।

इस दस्तावेज़ को निकालने के पीछे हमारी मंशा भारतीय राज्य के उस बर्बर अन्यायी चेहरे को सामने लाना है जो पिछले तीन साल के हमारे अनुभवों से उभर रहा है। इस चेहरे को जनता के सामने आने देने से कई तरह से रोका जाता रहा है। हम अपने द्वारा की गई जाँचों से निकलने वाले तथ्यों, इनके दूरगामी प्रभावों और हमारी चिन्ताओं को बड़े पैमाने पर लोगों के साथ साझा करना चाहते हैं। हमारा मानना है कि किसी भी नागरिक के साथ इस तरह की अमानवीय हिंसा कहीं भी नहीं होनी चाहिए, एक संवैधानिक जनतंत्र में तो हरगिज़ नहीं। सुरक्षा बलों द्वारा महिलाओं पर यौन हिंसा हमें नामंज़ूर है। इसे किसी भी तरह से, किन्हीं भी परिस्थितियों में न तो अनदेखा किया जा सकता है, न ही माफ किया जा सकता है और न ही सही ठहराया जा सकता है।

नक्सल-विरोधी मुहिम का खामियाजा: सोनी सोरी

मुझे बिजली के झटके देकर, मुझे नंगा घुमाकर, मुझे बेरहमी से पीटकर और मेरी योनि में पत्थर व कंकड़ डालकर - क्या नक्सलवाद की समस्या खत्म हो जाएगी?

रायपुर जेल से सोनी सोरी, जनवरी 2012

छत्तीसगढ़ राज्य के युद्धग्रस्त ज़िले दंतेवाड़ा की एक छत्तीस वर्षीय आदिवासी स्कूल शिक्षिका सोनी सोरी ने सितम्बर 2011 में दिल्ली में रहने के लिए शरण माँगी। छत्तीसगढ़ पुलिस द्वारा पीछा किए जाने पर उन्होंने राष्ट्रीय मीडिया, बुद्धिजीवी वर्ग, वकीलों और राजनीतिज्ञों से मिलने की कोशिश की। उन्हें यह बताने की कोशिश की कि कैसे उन्हें व अन्य आदिवासियों को माओवादी होने के झूठे केसों में फँसाया जा रहा है और कई सालों से अनाम जेलों में रखा जा रहा है। सोनी ने कहा कि उनके पास मीडिया और सुप्रीम कोर्ट को दिखाने के लिए सबूत हैं। हालाँकि, करोड़ों डॉलर के घोटाले की हड़बड़ाहट के बीच सुदूर छत्तीसगढ़ के असहाय आदिवासियों की कहानियों और एक स्कूल शिक्षिका की दुर्दशा पर मीडिया का बहुत अधिक ध्यान नहीं गया।

4 अक्टूबर 2011 को, इसके पहले कि सोनी सोरी सुप्रीम कोर्ट में अपनी याचिका दाखिल कर पाती, उन्हें दिल्ली में ही गिरफ्तार कर लिया

गया। छत्तीसगढ़ पुलिस के प्रतिशोध के डर से, जिनके कारनामे का खुलासा वे तहलका के स्टिंग ऑपरेशन में कर चुकी थीं, उन्होंने दिल्ली ज़िला अदालत और दिल्ली उच्च न्यायालय के जजों से याचना की कि उन्हें कुछ दिन और दिल्ली में रहने की इजाज़त दी जाए जब तक कि सुप्रीम कोर्ट में वे अपनी याचिका दाखिल नहीं कर लेतीं। (दशहरा के दिन अदालत में छुट्टी होने के कारण याचिका दाखिल करने में देरी हुई थी।) उन्होंने छत्तीसगढ़ पुलिस के साथ हुई अपनी पहले की बातचीत का उल्लेख किया और अपने हाथ में आई चोटों के पुराने निशान दिखाए। उन्होंने दिल्ली पुलिस की हिरासत में रहकर उन पर लगाए गए आरोपों की सुनवाई का सामना करने की अपनी तैयारी के बारे में अदालत को बार-बार आश्वासन दिलाया। फिर भी, 7 अक्टूबर को अदालत ने उनकी चिन्ताओं को खारिज कर उन्हें इन स्पष्ट निर्देशों के साथ छत्तीसगढ़ पुलिस को सौंप दिया कि वह उनकी सुरक्षा सुनिश्चित

करे और इसके लिए उठाए गए कदमों की रूपरेखा के साथ दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष एक रपट पेश करे। मानव अधिकारों और माननीय न्यायालय के निर्देशों का स्पष्ट उल्लंघन कर, छत्तीसगढ़ पुलिस ने अपनी हिरासत में दो दिनों के दौरान सोनी सोरी को भयावह शारीरिक व यौन यातनाएँ दीं। सोनी सोरी ने जेल से लिखे एक पत्र में इन यातनाओं का विवरण किया है -

8 अक्टूबर 2011, शनिवार की रात दंतेवाड़ा के नए पुलिस थाने में, जिसे कि पुराने पुलिस थाने के बगल में बनाया गया है, मुझे यातना दी गई। उस रात जब मैं सो रही थी, मुझे दो पुलिसवालों द्वारा जगाया गया। मैंने उनसे पूछा कि मुझे क्यों जगाया है? मुझे बताया गया कि पुलिस अधीक्षक अंकित गर्ग आए हैं। मुझे दूसरे कमरे में ले जाया गया। उस कमरे में पुलिस अधीक्षक अंकित गर्ग और किरनादुल पुलिस थाने के एसडीपीओ बैठे हुए थे। मुझे कुछ समय के लिए महिला पुलिस के साथ उस कमरे में बिठाया गया।

(अंकित गर्ग ने कहा) “कुतिया, क्या तुम जानती हो कि मैं कौन हूँ? मैं पुलिस अधीक्षक अंकित गर्ग हूँ... इसके पहले बीजापुर में हुआ करता था और जल्द ही प्रमोशन कर मुझे पुलिस अधीक्षक से बड़े ओहदे का अधिकारी बना दिया जाएगा।” उसने मेज पर ज़ोर से ठोंका और कहा, “सबकुछ यहीं से होता है। हम जो आदेश देंगे वही होगा। हम ही प्रशासन हैं, हम ही सत्ता हैं और हम ही सरकार हैं। क्या तुम समझती हो, कुतिया?” लम्बे समय तक वह मुझे गाली देता रहा और मुझे मानसिक तौर पर प्रताड़ित करता रहा। मैंने अपने पहले के पत्र में इन गालियों का जिक्र किया है। मुझे कुछ कागज़ों पर हस्ताक्षर करने और कुछ लिखने के लिए कहा गया। जब मैंने मना कर दिया तो मुझ पर कड़क बातों के द्वारा दबाव डाला गया। मैं फिर भी मना करती रही और तब उन्होंने मेरी टाँगों, पैरों और कपड़ों में बिजली के झटके देना शुरू किया।

मैंने उनके लिखे हुए कागज़ों पर हस्ताक्षर नहीं किए। “कुतिया, मेरे लिखे हुए कागज़ पर हस्ताक्षर कर!” – मेरे ऊपर बहुत दबाव बनाया गया। मैंने उनसे कहा इससे अच्छा है कि वो मुझे मार दें। अंकित गर्ग ने कहा, “मैं तुम्हें दण्ड देने के बाद ही वापस भेजूँगा। तुम्हें खुद पर इतनी शर्म आने लगेगी कि तुम जेल की दीवारों से अपना सिर पीट-पीटकर शर्म से मर जाओगी। तुम एक पढ़ी-लिखी महिला हो; तुम इस शर्म के साथ जी नहीं पाओगी।”

उसने आदेश दिया कि बिजली के झटके दिए जाएँ। मुझे लगातार बिजली के झटके देने के बाद मेरे कपड़े उतरवा लिए गए। मुझे नंगा खड़े रखा गया। अपनी कुर्सी पर बैठे हुए अंकित गर्ग मुझे देख रहा था। मेरे शरीर को देखते हुए उसने मुझे गन्दी भाषा में गाली दी और मुझे अपमानित किया। कुछ समय बाद वह बाहर गया और कुछ ही देर में उसने तीन लड़के भेज दिए। उन लड़कों ने मुझसे छेड़छाड़ करना शुरू कर दी और उनके धक्का देने पर मैं गिर गई। उसके बाद वे मेरी योनि में क्रूर तरीके से कुछ चीज़ें डालने लगे। मैं दर्द सह नहीं पा रही थी, मैं लगभग बेहोश हो चुकी थी। बहुत देर के बाद मुझे होश आया और मैंने अपने आपको उस कमरे में पाया जहाँ मैं सोई थी। तब तक सुबह हो चुकी थी।

(सोनी सोरी द्वारा जनवरी 2012 में माननीय सुप्रीम कोर्ट के समक्ष दाखिल किए गए पत्र के कुछ अंश)

इस प्रकार सोनी सोरी, जो कि 7 अक्टूबर 2011 को छत्तीसगढ़ पुलिस को सौंपे जाने तक अच्छी हालत में थीं, 10 अक्टूबर तक इतनी बुरी हालत में आ गई थीं कि न तो वह पुलिस वैन से उतर पा रही थीं और न ही मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत होने के लिए अदालत कक्ष तक चलकर जा पा रही थीं। अदालत के बाबू ने उनके बयान लिए और मजिस्ट्रेट ने न्याय का मखौल उड़ाते हुए

उन्हें बिना देखे व बिना बात किए न्यायिक हिरासत में भेज दिया।

पुलिस ने दावा किया और मजिस्ट्रेट ने स्वीकार लिया कि “वह बाथरूम में फिसल गई थी जिससे उसके सिर में चोट आ गई थी।” ये खुद सोनी सोरी ही थीं जिन्होंने कई दिनों बाद मजिस्ट्रेट को उसके फर्ज की याद दिलाई। 26 नवम्बर 2011 के पत्र में सोनी सोरी लिखती हैं:

मैंने मेरे साथ हुई हर एक घटना के बारे में अदालत को सूचित करने की कोशिश की। फिर भी अदालत में जज मैडम (मजिस्ट्रेट) मुझे गम्भीरता से नहीं ले रही थीं... मैडम बोलीं कि जब 10.10.2011 को तुम्हें अदालत में पेश किया गया था तब तुमने यह सब अदालत में क्यों नहीं बताया? मैं तुरन्त कार्यवाही कर देती।

तब मैंने उनसे पूछा कि आपने मुझे अपनी अदालत के अन्दर क्यों नहीं बुलाया था?

उन्होंने बोलना शुरू किया कि उन लोगों (पुलिसवालों) ने मुझे बताया था कि तुम बाथरूम में गिर गई थीं और उठ नहीं सकती थीं।

फिर भी, मैडम आपको आदेश देना चाहिए था कि किसी भी तरीके से मुझे अदालत में पेश किया जाए। यदि ऐसा हुआ होता तो मैं निश्चित ही आपको सबकुछ बताने की कोशिश करती। आपने मुझे अदालत के बाहर रखा और आदेश पारित कर दिया कि मुझे जेल भेज दिया जाए। अदालत के बाहर, उन पुलिसवालों के सामने जो मेरी इस हालात के लिए ज़िम्मेदार थे, मैं सबकुछ कैसे कह पाती?

यातना के आरोपों पर राज्य की प्रतिक्रिया: देर करो. खारिज करो. उपेक्षा करो

सोनी सोरी की यातना की खबरें तभी लोगों के बीच आ सकीं जब एक अज्ञात पत्रकार द्वारा दंतेवाड़ा अस्पताल में दर्द से छटपटाती सोनी का सेल फोन के कैमरे से बनाया गया एक वीडियो 10 अक्टूबर 2011 को यू-ट्यूब पर अपलोड कर दिया गया। हालाँकि तब भी पुलिस चोटों को कम करके बता रही थी। एडीजी (नक्सल) रामनिवास ने कहा कि ये “नियमित जाँच” से ज्यादा कुछ नहीं है। दंतेवाड़ा ज़िला अस्पताल के निरीक्षक डॉक्टरों ने संवाददाताओं से कहा कि “जब वह (सोनी) यहाँ लाई गई तब वह बेहोश

थी।” एक्स-रे छवियों ने उनके सिर और पीठ की चोटों की पुष्टि की। “उसके सिर के दाहिनी तरफ ओसीपिटो पेरिटल हिस्से में भातरी चोट है। उसे पीठ के निचले हिस्से (कमर) में दर्द भी है।” ऐसा परीक्षण करने वाले डॉक्टरों ने संवाददाताओं से कहा।²

सोनी सोरी को तुरन्त ही पुलिस द्वारा जगदलपुर महारानी अस्पताल ले जाया गया। बाद में जगदलपुर जेल के अधिकारियों ने उनकी नाजुक हालत देखकर उन्हें न्यायिक हिरासत में लेने से मना कर दिया। सोनी सोरी ने एक दिन जगदलपुर

अस्पताल में बिताया जहाँ डॉक्टरों ने यह भी देखा कि दर्द व लगातार बेहोशी में रहने के कारण वे खड़ी नहीं हो पा रही थीं और इसके बावजूद उन्हें रायपुर स्थित अम्बेडकर मेमोरियल अस्पताल के 10 घंटे के सफर पर भेज दिया गया। रायपुर अस्पताल ने उनकी यातना के चार दिन बाद उनका इलाज किया लेकिन उन्हें सी.टी. स्कैन में कुछ भी असामान्य नहीं मिला। साधारण दर्द निवारक देने के अलावा उन्होंने कोई भी सिफारिश नहीं की और सोनी को न्यायिक हिरासत में रायपुर जेल भेज दिया।

जेल में सोनी की हालत फिर से बिगड़ने लगी। वे अभी भी चल नहीं पा रही थीं। शुरू में यातनाओं के खिलाफ चुप रहने के बाद धीरे-धीरे वे अपने परिवारवालों और मित्रों के सामने कुछ विवरणों का खुलासा करने लगीं। इसी बीच सुप्रीम कोर्ट के तीन न्यायाधीशों की एक पीठ ने उनकी याचिका पर काम करते हुए पाया कि उनको आई चोटें उतनी सामान्य नहीं लग रही जितनी कि राज्य ने उनको बताई थीं। इस पीठ ने कोलकाता के एन.आर.एस. मेडिकल कॉलेज में सोनी की स्वतंत्र चिकित्सीय जाँच कराने के आदेश दिए।

सोनी को दी गई यातनाओं की हदों का खुलासा आखिरकार तब हुआ जब एन.आर.एस. अस्पताल के मेडिकल बोर्ड ने 25 नवम्बर 2011 को अदालत में अपने जाँच-परिणाम प्रस्तुत किए: उनकी योनि में गहराई तक तीन पत्थर घुसे हुए थे जो कि उनके पेट दर्द और चलने में दिक्कत का मुख्य कारण थे। एम.आर.आई. स्कैन में यह भी पता चला कि उसकी रीढ़ की हड्डी पर वृत्ताकार खरोंचें थी।

इन तथ्यों की रोशनी में यह ध्यान देने योग्य बात है कि सोनी द्वारा पीठ के निचले हिस्से में दर्द,

खड़े न हो पाने, पीठ के निचले हिस्से में दर्द और चलने में कठिनाई के बारे में शिकायत करने के बावजूद उनकी जाँच करने वाले छत्तीसगढ़ के तीनों अस्पताल में से किसी ने भी उनके यौनांगों में सूजन, योनि और मलाशय में फँसे पत्थर या उसकी रीढ़ की चोट के बारे में कुछ नहीं बताया। दरअसल, रायपुर के अम्बेडकर अस्पताल के चिकित्सा अधीक्षक डॉक्टर विवेक चौधरी ने न केवल पुलिस को क्लीन चिट दी बल्कि सोनी सोरी को “चोटें झूठी होने” का दोषी भी ठहराया। हिन्दुस्तान टाइम्स को उन्होंने बताया कि “चिकित्सा जाँचें बताती हैं कि वह अस्वस्थ होने का बहाना कर रही है।”³

तथ्यों को नकार देने की यह प्रवृत्ति छत्तीसगढ़ सरकार के उच्च अधिकारियों तक फैली हुई है। 14 अक्टूबर 2011 को दिल्ली में प्रधान सचिव, एन. बैजेन्द्र कुमार के साथ एक बैठक में महिला संगठनों को यह आश्वासन दिया गया था कि वे “जेल के भीतर सुरक्षित थीं और उनकी चोटें गम्भीर नहीं थीं।” यह भी कहा गया था कि स्वास्थ्य सचिव ने “तथ्य की पुष्टि” की है इसलिए उनकी सुरक्षा के बारे में चिन्ता करने की कोई ज़रूरत नहीं है; कि उन्हें दंतेवाड़ा के पुलिस अधीक्षक अंकित गर्ग और राज्य के ज़िला पुलिस अधीक्षक अनिल एम. नवाने ने बताया था कि सोनी सोरी के साथ कोई बुरा बर्ताव नहीं किया गया।

एक तरफ राज्य सरकार हिरासत में यातना के कारण सोनी सोरी को आई गम्भीर चोटों को कम करके आँक रही थी। वहीं दूसरी तरफ राष्ट्र के लिए गम्भीर खतरा बताकर उन्हें “खतरनाक अपराधी” की तरह चित्रित करने में व्यस्त थी। अपनी गिरफ्तारी के बाद सोनी को पता चला कि राज्य सरकार ने उन पर आठ अलग-अलग

आपराधिक मामले लगाए थे, राजद्रोह और राष्ट्र के खिलाफ युद्ध छेड़ने सहित उन्हें बहुत गम्भीर अपराधों का एक नम्बर अपराधी बताया था। इन आरोपों की कमज़ोरी का सबूत इन तथ्यों में मिलता है कि सोनी इनमें से दो मामलों में बरी हो गई हैं और एक तीसरे मामले में मुख्य शिकायतकर्ता ने अदालत में स्वीकार किया है कि उसने शिकायत में सोनी का नाम दर्ज नहीं कराया था, पुलिस ने अपनी तरफ से प्राथमिकी (एफ.आई.आर.) में उनका नाम जोड़ दिया था। राज्य सरकार का सोनी को लम्बे समय तक सलाखों के पीछे रखने का इरादा इस तथ्य से उभरकर आता है कि सोनी को अभी तक दो मामलों में गिरफ्तार तक नहीं किया गया है। वे पिछले एक साल से अधिक से न्यायिक हिरासत में हैं, फिर भी उन्हें इन मामलों में “फरार” दिखाया जा रहा है।

अपराधी को पल्लुकार. पीडित को दण्ड

सोनी सोरी का केस उन ठोस तथ्यों के मामले में उल्लेखनीय है जिसमें पीड़िता द्वारा विशेष पुलिस अधिकारियों के खिलाफ लगाए गए उत्पीड़न और अत्याचार के आरोपों को साबित करने वाले ढेर सारे सबूत मौजूद हैं। फिर भी यह केस ठीक उन्हीं पुलिस अधिकारियों को दी गई खुली दण्ड मुक्ति के लिए भी उल्लेखनीय है।

सितम्बर 2011 में सोनी ने मीडिया को बताया था कि कैसे उसे और उसके पत्रकार भतीजे, लिंगा कोदोपी को स्थानीय पुलिस द्वारा नक्सलियों के लिए पैसा ले जाने वाले वाहक बताकर झूठे आरोपों में फँसाया जा रहा था। उन्होंने उनको बार-बार परेशान करने वाले पुलिसवालों के नाम भी बताए थे – सिपाही मंकर और सिपाही बसंत। इन पुलिसवालों ने दिल्ली-आधारित पत्रिका

तहलका के कार्यालय से फोन पर सोनी के साथ बातचीत में इस षडयंत्र में अपनी भागीदारी को स्वीकारा है। यह बातचीत फोन से टेप की गई थी।¹⁴ फिर भी अभी तक न तो छत्तीसगढ़ पुलिस ने इस झूठे आरोप पर कोई ध्यान दिया है, बल्कि परेशान करने वाली बात यह है कि सोनी सोरी की गिरफ्तारी के बाद पुलिस के वही सिपाही उनकी पूछताछ के दौरान उपस्थित थे और उन्हें यातना देने वालों में शामिल थे।

नवम्बर 2011 तक सोनी सोरी द्वारा जेल में यातना के बाद लिखे गए पत्र दिल्ली पहुँच गए थे और इससे यह एकदम साफ हो गया था कि उस समय के दंतेवाड़ा के पुलिस अधीक्षक, अंकित गर्ग, सोनी सोरी को यातना देने और दूसरों को उसका यौन उत्पीड़न करने के लिए आदेश देने के लिए प्रमुख रूप से ज़िम्मेदार थे। इस स्पष्ट भूमिका के बिना भी, सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित कानून मानता है कि एक कैदी का प्रभारी पुलिस अधिकारी उसको पुलिस हिरासत में आई किसी भी तरह की चोट के लिए ज़िम्मेदार माना जाएगा।¹⁵ फिर भी, सोनी सोरी के पत्रों में अंकित गर्ग को ज़िम्मेदार ठहराए जाने के बावजूद और कोलकाता की मेडिकल रपट होते हुए भी जो कि पुलिस हिरासत में सोनी सोरी के यौनांगों में पत्थर और कंकड़ डाले जाने की पुष्टि करती है, छत्तीसगढ़ राज्य ने इस यातना की विभागीय जाँच का कोई आदेश भी नहीं दिया।

यह और भी अधिक चौंकाने वाली बात है कि विभिन्न महिला समूहों द्वारा पुलिस अधीक्षक अंकित गर्ग के खिलाफ कठोर कार्यवाही की माँग करने पर उसे जाँच के दायरे में लेकर सोनी सोरी के साथ हिरासत में हुई हिंसा में उसकी भूमिका की जाँच करने की बजाय, छत्तीसगढ़ सरकार की सिफारिश पर राष्ट्र के 63वें गणतंत्र दिवस पर

भारत सरकार द्वारा उसे शूरवीर राष्ट्रपति पुलिस पदक से नवाज़ा गया।

जहाँ यौन यातना के जघन्य अपराध के अपराधियों के प्रति राज्य का रवैया खातिरदारी और अनुमोदन का है; वहीं वह पीड़िता को बदनाम व अपमानित करने को तत्पर है। अक्टूबर 2011 में कोलकाता में चिकित्सा परीक्षण के बाद मार्च 2012 तक जेल अधिकारियों द्वारा सोनी की चिकित्सा पर

कोई ध्यान नहीं दिया गया, जबकि उन्होंने गम्भीर यातनाओं से उत्पन्न जटिलताओं की शिकायत की थी। जब देश भर के महिला समूहों ने उनकी स्थिति का पता लगाने के लिए उनसे जेल में मिलने की कोशिश की तो उन्हें मिलने नहीं दिया गया। सोनी ने 7 मार्च 2012 की तारीख में जेल से सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश को सम्बोधित करते हुए एक पत्र लिखा:

सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर ही मुझे इलाज के लिए कोलकाता ले जाया गया। इलाज के दौरान, डॉक्टर ने आन्तरिक दर्द ठीक न हो जाने तक मुझे नियमित दवाइयाँ लेने की सलाह दी थी। लेकिन मुझे ये दवाइयाँ नहीं दी जा रही हैं। मैंने इस बारे में जगदलपुर जेल में शिकायत की है। रायपुर जेल में आने के बाद मैंने इस बारे में कई बार जेलर मैडम को बताया। यहाँ तक कि दंतेवाड़ा की निचली अदालत में भी मैंने बताया कि मेरी आन्तरिक दिक्कतें बढ़ रही हैं। मेरी दवाइयाँ मुझे मिलनी चाहिए। इस सब के बावजूद मुझे आज तक दवाइयाँ नहीं दी गई हैं। ऐसी परिस्थितियों से परेशान होकर मैंने जेल की डॉक्टर मैडम को भी बोला कि मुझे इलाज की ज़रूरत है। डॉक्टर मैडम कहने लगीं, "तुम यहाँ प्रशासन के द्वारा आई हो..." और उन्होंने लिखकर दिया कि मैं एक नक्सली महिला हूँ... मेरा दर्द बढ़ता जा रहा है।

सुप्रीम कोर्ट के हस्तक्षेप के बाद ही पूर्ण चिकित्सा उपचार सम्भव हो पाया। मई 2012 में कोर्ट ने आदेश दिया कि देश के प्रमुख चिकित्सा संस्थान अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान दिल्ली में उनकी जाँच कराई जाए। अगस्त 2012 में उसने बताया कि जेल के भीतर कपड़े उतरवाकर उसकी तलाशी ली गई। सुप्रीम कोर्ट को लिखे गए एक पत्र में उसने लिखा कि उसे ज़मीन पर नंगा बिठाए रखते थे, और तलाशी के नाम पर अनुपयुक्त रूप से उसके शरीर को छूते थे।

21 अगस्त को रायपुर जेल में 100 दूसरी महिला कैदियों के सामने सोनी को नंगा बिठाया गया। सोनी सोरी ने अन्न त्याग कर और अपने आहार को तरल व कुछ फलों (जिनको वह जेल के अन्दर जुटा सकती थीं) तक सीमित कर अपने साथ हुए दुर्व्यवहार पर विरोध जताया। उनका स्वास्थ्य, जो एम्स में इलाज के बाद से ठीक

होना शुरू हुआ था, फिर से खराब होने लगा। 19 अक्टूबर 2012 को उनकी गिरफ्तारी को एक साल से थोड़ा ज़्यादा समय हो जाने के बाद, अदालत के दौरे के दौरान वे बेहोश हो गईं और एक बार फिर कमज़ोरी और थकावट की वजह से उन्हें अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा।

गौरतलब है कि आज छत्तीसगढ़ की जेलें अनेकों सोनी सोरी से भरी पड़ी हैं। कभी-कभार ही हिरासत में यातना और हिंसा की एक घटना भाषा और दूरी की बाधाओं को लॉघकर राष्ट्र की अन्तरात्मा को चुनौती देती है। परन्तु अक्सर बहुतायत में ऐसे मामले पुलिस थाने और जेलों की मोटी दीवारों में ही दफन कर दिए जाते हैं। अपनी गिरफ्तारी के तुरन्त बाद जगदलपुर जेल से दिल्ली की एक सामाजिक कार्यकर्ता को लिखे गए पत्र में सोनी सोरी स्वयं हमें याद दिलाती है:

इस जेल में कई अन्य महिला कैदी भी कष्ट झेल रही हैं। यहाँ लगभग 60 महिला कैदी हैं। उन्होंने मुझे बताया कि वे लड़ने में सक्षम नहीं थीं क्योंकि उन्हें सहयोग करने के लिए कोई भी नहीं था... उनकी यातनाओं की कहानियाँ सुनने के बाद, मुझे अपनी यातनाएँ कम लगती हैं। दीदी, तुम्हें इन औरतों के लिए भी कुछ न कुछ ज़रूर करना पड़ेगा।

गगनभेदी चप्पी. निर्णायक निष्क्रियता

चूँकि “नक्सली” का ठप्पा सोनी सोरी से लगातार चिपका हुआ है इस वजह से सभी लोकतांत्रिक संस्थाएँ इस मामले में कुछ भी हस्तक्षेप करने से बचती हैं। यूँ तो सोनी के मामले में “नक्सली” का ठप्पा निश्चित रूप से गलत है – यह कई दस्तावेज़ों में दर्ज है कि उसके परिवार पर, दरअसल, नक्सलियों ने सरकार के पक्ष में होने का आरोप लगाया था – फिर भी यह बड़ा सवाल बरकरार है: अगर सोनी सही में माओवादियों की हमदर्द होती तो क्या? क्या इसीलिए इस तरह की भयावह यातनाएँ सहनीय हैं? क्या मानव अधिकार कुछ वैचारिक बातों से सहमत लोगों के लिए ही हैं? क्या माओवादियों के खिलाफ युद्ध में यौन यातना स्वीकार्य है?

छत्तीसगढ़ में रमन सिंह की सरकार, जो कि “नक्सलियों के प्रति अपनी कठोर छवि” के लिए जानी जाती है, से सोनी के मामले में संवेदना की कोई उम्मीद नहीं कर सकते। पर सोनी सोरी के लिए न्याय के अभियान के प्रति उनकी खुली शत्रुता हमें अवाक छोड़ देती है। 1 दिसम्बर 2011 को जब रमन सिंह दिल्ली आए थे तो उन्होंने दिल्ली स्थित विभिन्न महिला समूहों के लगभग 40 प्रतिनिधियों, लोकतांत्रिक अधिकार समूहों और अन्य प्रगतिशील व्यक्तियों से छत्तीसगढ़



फोटो: राजकीय दमन और यौन हिंसा के खिलाफ महिलाएँ

सदन में मिलने से इन्कार कर दिया था। इसकी बजाय मुख्यमंत्री ने सभी आन्दोलनकारियों को परिसर से ज़बरदस्ती बाहर निकालने और घसीटकर रास्ते से हटाने का दिल्ली पुलिस को आदेश दिया ताकि वे “अपनी अगली बैठक” में जा सकें।

केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधियों के साथ अधिक कौशल और कूटनीति के साथ हुई आन्दोलन की बैठकें भी उतनी ही निरर्थक रहीं। गृहमंत्री, राष्ट्रपति और जनजातीय मामलों के मंत्री सभी छत्तीसगढ़ राज्य के हकों का बहाना करके पीछे हट गए, उन्होंने बड़ी आसानी से इन तथ्यों की अनदेखी कर दी कि अनुसूचित क्षेत्रों में आदिवासियों के अधिकारों के मामले में केन्द्र को हस्तक्षेप करने का अधिकार है, और विशेषकर, जब लोगों के मौलिक अधिकार संकट में हों।⁶

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और राष्ट्रीय महिला आयोग जैसी स्वायत्त संस्थानों की प्रतिक्रियाएँ सबसे अधिक निराशाजनक रहीं। विभिन्न समूहों द्वारा कई आवेदन देने के बावजूद, दोनों ही आयोगों ने इस मामले में कोई भी कार्यवाही करने से साफ मना कर दिया। दोनों ही आयोग इस बात



फोटो: राजकीय दमन और यौन हिंसा के खिलाफ महिलाएँ

का हवाला देकर कि मामला अदालत में चल रहा है, अधिकार क्षेत्र की कमी का बहाना बनाते रहे। यह बहाना न केवल इस तथ्य को नज़रअन्दाज़ करता है कि सोनी सोरी मामले के कई पहलु किसी भी अदालत में विचाराधीन नहीं हैं, बल्कि ये इन आयोगों को अदालत के मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए दी गई व्यापक शक्तियों को भी महत्व नहीं देते हैं।¹⁷

आयोगों ने न केवल सोनी के साथ हिरासत में हुई यातना के मामले में हस्तक्षेप करने से मना किया, बल्कि पुलिसवालों द्वारा बाद में उनके परिवारवालों के साथ उत्पीड़न, जेल के भीतर सोनी की चिकित्सा देखभाल से इन्कार, उन्हें नियमित रूप से नंगा कर तलाशी लेने का अपमानजनक व्यवहार, जेल अधिकारियों द्वारा उन्हें दैनिक ज़रूरतों के सामान देने से मना करना, उनके पैरों को अस्पताल के बिस्तर से बाँध देना, आदि मामलों में भी कार्यवाही नहीं की।

अन्त में, जहाँ न्यायपालिका ही उनके मामले में उम्मीद की अन्तिम शेष किरण दिखाई पड़ती है, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि न्यायपालिका ने भी सोनी सोरी को बुरी तरह उपेक्षित किया है।

सबसे पहली घटना में ही इस बात की पूरी आशंका थी कि छत्तीसगढ़ पुलिस की हिरासत में सोनी सोरी की ज़िन्दगी को खतरा था। इसके बावजूद, उन्हें उसी न्यायपालिका ने पुलिस की हिरासत में सौंप दिया गया जिसे उनकी सुरक्षा के लिए सचते होना चाहिए था। यातना के तुरन्त बाद सोनी इतनी कमज़ोर हालत में थीं कि वे दंतेवाड़ा मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत न हो सकीं। फिर भी, मजिस्ट्रेट ने उनकी चोटों के बारे में सोनी का विवरण सुनने की बजाय पुलिस की बाथरूम में गिरने की कहानी को स्वीकार कर लिया।

सोनी सोरी का इलाज करने में छत्तीसगढ़ के अस्पतालों के असफल रहने पर, सुप्रीम कोर्ट ने कोलकाता में चिकित्सा परीक्षण करने का आदेश देकर उन्हें कुछ राहत ज़रूर प्रदान की थी। लेकिन कोलकाता से चौंकाने वाली रपट, जो कि उसके यौनांगों में पत्थर डाले जाने का खुलासा करती है, मिलने के बाद भी सुप्रीम कोर्ट द्वारा कार्यवाही नहीं किया जाना समझ से परे है। न्याय के हित में काम करने वाली एक मानवीय अदालत ने ऐसे जघन्य अपराध की पीड़िता को वापस छत्तीसगढ़ में उन्हीं उत्पीड़कों को कैसे सौंप दिया और सोनी की छत्तीसगढ़ से बाहर,

दिल्ली में स्थानान्तरित करने सम्बन्धित याचिका को खारिज कर दिया?

सबसे ज़्यादा निराशाजनक है मामले की सुनवाई में हो रही अकथनीय देरी। सुप्रीम कोर्ट को कोलकाता से चौंकाने वाली रपट मिलने के बाद पूरा एक साल बीत चुका है, और अभी तक केवल एक बार ही इस मामले की सुनवाई हो सका है। वह भी तब जब उसके समक्ष तीन तत्काल आवेदन लगाए गए कि सोनी को तुरन्त चिकित्सीय ध्यान की ज़रूरत है जो कि उसे रायपुर जेल में नहीं मिल पा रही है। उस अकेली सुनवाई में सुप्रीम कोर्ट ने उसकी तत्काल देखभाल के सीमित मुद्दे को ही सम्बोधित किया, लेकिन हिरासत में यातना और हिंसा के बड़े सवाल को अनछुआ ही छोड़ दिया। नवम्बर के मध्य में राष्ट्रीय

मानवाधिकार आयोग से तीन सदस्यों के एक दल ने रायपुर केन्द्रीय कारागार में सोनी से मुलाकात की। उसके बाद उसके साथ होने वाले दुर्व्यवहार में कमी आई है और उसने ढाई माह बाद अपनी आंशिक भूख हड़ताल छोड़ दी है। एक तरफ सोनी का जेल के अपमान भरे जीवन से संघर्ष जारी है, वहीं सुप्रीम कोर्ट ने उसके मामले में अगली सुनवाई 27 जनवरी 2014 को सूचिबद्ध की है – पिछली सुनवाई से एक साल से ज़्यादा और यातना की घटना के दो साल से ज़्यादा समय बीत जाने के बाद। तब तक, मामला “विचाराधीन” है की आड़ में दुनिया के इस सबसे बड़े लोकतंत्र के अन्य सभी संस्थान आराम से बैठे हुए हैं और निष्क्रियता से पूरे तमाशा को देख रहे हैं।

¹ गिरफ्तार 'माओवादी' महिला सिर व रीढ़ में चोटों के साथ छत्तीसगढ़ अस्पताल में, इंडियन एक्सप्रेस, 10 अक्टूबर 2011, <http://www.indianexpress.com/news/arrested-woman—maoist—in-chhattisgarh-hospital-with-head-spinal-injuries/858356/>

² माओवादी सोनी सोरी को चोटों के साथ अस्पताल में भर्ती किया गया, द टाइम्स ऑफ इंडिया, 10 अक्टूबर 2011, http://articles.timesofindia.indiatimes.com/2011-10-10/india/30262770_1_injuries-district-hospital-judicial-custody

³ डॉक्टरों के अनुसार, संदिग्ध माओवादी सोनी सोरी चोटों का बहाना बना रही है, हिन्दुस्तान टाइम्स, 14 अक्टूबर 2011, <http://www.hindustantimes.com/India-news/Chhattisgarh/Suspected-Maoist-Soli-Sori-feigned-injuries-say-doctors/Article1-757045.aspx>

⁴ सोनी सोरी का दुखदाई सच, शोमा चौधरी, तहलका, वॉल्यूम 8, अंक 41, दिनांक 15 अक्टूबर 2011

⁵ उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम सागर यादव, 1985 एस.सी.सी. (1) 552

⁶ छत्तीसगढ़ का दंतेवाड़ा ज़िला संविधान की पाँचवीं अनुसूची के तहत एक अनुसूचित क्षेत्र है। पाँचवीं अनुसूची के खण्ड तीन के तहत इन क्षेत्रों का प्रशासन और नियंत्रण सीधे राष्ट्रपति के अधीन आता है, इसके अनुसार "संघ की कार्यकारी शक्ति यहाँ तक होगी कि वह निर्धारित क्षेत्रों के प्रशासन के लिए राज्यों को दिशा-निर्देश दे।"

⁷ राष्ट्रीय महिला आयोग की वेबसाइट में मुख्य अदालती हस्तक्षेप शीर्षक से एक पेज है (<http://ncw.nic.in/frmLImpInterventions.aspx>) जिसमें उन अदालती मामलों की सूची है जहाँ राष्ट्रीय महिला आयोग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसमें भँवरी देवी के सामूहिक बलात्कार मामले से लेकर इद्दत के समय के आगे भी मुस्लिम महिलाओं को रख-रखाव की पात्रता के मामले शामिल हैं।

नक्सल-विरोधी अभियान की शक्ति में छापे और बलात्कार: आरती माँझी

गजपति ज़िले में आतंक के माहौल में जी रहे सामूहिक बलात्कार के चश्मदीद गवाह सच बोलने से डरते हैं। कुछ गवाह खुद भी जेल में हैं, अन्यों को हत्या की धमकी दी गई।

12 फरवरी 2010 की पौ फटने से पहले, जादिंगी गाँव में 20 वर्षीय आरती माँझी रोज़ की तरह अपने घर में सुबह धान कूट रही थीं। उसके पिता दक्षा माँझी, माँ, भाई और भाभी उसी कमरे में सो रहे थे। उसी समय सुरक्षा बल के लोग वहाँ आए व उनका दरवाज़ा पीटने लगे। अन्दर से आरती ने उत्तर दिया कि वे अभी नहीं खोलेंगी, सुबह हो जाने के बाद ही खोलेंगी। तब उन्होंने आगे और पीछे के दोनों दरवाज़े तोड़ दिए और घर के अन्दर घुस आए। उन्होंने आरती को पीटना शुरू कर दिया, उन्हें यह कहते हुए घसीटकर बाहर बरामदा में ले आए कि वे नक्सलियों से मिली हुई हैं। लाजर माँझी, जो एक घर दूर रहते थे, को भी घसीटकर बाहर निकाला गया। एक दूसरे व्यक्ति, प्रसन्ना माँझी को सुरक्षा बल वाले यह कहकर ज़बरदस्ती उठाकर लेकर गए कि वह 'सागर' था।

अडवा पुलिस थाने से लगभग 40 विशेष ऑपरेशन समूह (एस.ओ.जी.) के और अन्य पुलिसकर्मियों ने गाँव पर धावा बोला था। वे खास दो व्यक्तियों

– 'सागर' और 'आज़ाद' – को ढूँढ रहे थे, जिन्हें उन्होंने नक्सली बताया था। 'सागर' के ठिकाने के बारे में पूछताछ करते हुए उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि वह कल रात गाँव में आया था। उन्होंने कई लोगों की यह कहकर हाथापाई की: "तो तुम नक्सली हो!"; "तुम्हारा गाँव एक नक्सली गाँव बन गया है"; "तुम नक्सलियों में शामिल क्यों हुए?" कई गाँववालों ने बताया कि उन्हें लातें मारी गईं और बन्दूक से धमकाया गया।

कुछ गाँववालों को वहाँ उपस्थित लोगों में से 'सागर' को पहचानने के लिए कहा गया। जब उन्होंने कहा कि वो 'सागर' को नहीं जानते, तो गाँव में सभी लोगों को नाम से पहचाने जाने के लिए कहा गया। गाँव की एक अन्य महिला, मार्था माँझी के साथ भी बुरा बर्ताव किया गया। सुरक्षा बलों ने उनसे पूछा था कि क्या आरती (माओवादी) पार्टी में शामिल हो गई है, और मार्था ने ऐसी किसी जानकारी से इन्कार कर दिया था। इसके आगे कोई चर्चा किए बिना, सुरक्षा बल ने आरती को हिरासत में ले लिया।

सुरक्षा बल वाले आरती के चचेरे भाई लाजर माँझी और प्रसन्ना माँझी को भी अपने साथ ले गए। उसके छोटे भाई लालू माँझी ने सुरक्षा बल का पीछा किया क्योंकि वे उसकी बहन को ले जा रहे थे। जादिंगी से उठाए गए चार लोगों के साथ सुरक्षा बल वाले टांगिली (जादिंगी से लगभग चार किलोमीटर दूर) पहुँचे। उस गाँव में वे किसी 'हेमन्त' के बारे में पूछ रहे थे। उसके नहीं मिलने पर वे श्यामा, हेमन्त के भाई और एक अन्य लड़के दाकुआ माँझी को उठाकर ले गए।

संदर्भ

गजपति ज़िले के विकासखण्ड मोहना की ग्राम पंचायत कटमा का जादिंगी गाँव, 29 परिवारों का एक छोटा-सा गाँव है। इस इलाके के अधिकतर लोग कुई भाषा बोलने वाले ईसाई कोंध आदिवासी हैं। जादिंगी पूरे इलाके की ठेठ सरकारी उपेक्षा का एक ज्वलन्त उदाहरण है। यह ग्राम पंचायत कटमा की यातायात के योग्य सड़क से आठ किलोमीटर दूर स्थित है। यह दूरी चलना अपने आप में कठिन है क्योंकि रास्ता चढ़ाई वाला है। लड़कियों में से कोई भी प्राथमिक स्कूल से आगे नहीं पढ़ी हैं क्योंकि गाँव में इससे आगे की कोई सुविधाएँ ही नहीं हैं। माध्यमिक स्कूल के लिए कुछ लड़के कटमा के हॉस्टल में रहते हैं। लोग जो कुछ भी उगा सकते हैं उसे खाते हैं – फलियाँ, रागी (एक अनाज), धान इत्यादि। साल के कई महीने वे छोटी-मोटी मज़दूरी और वन उपज पर निर्भर रहते हैं। कुछ परिवारों से युवक-युवतियाँ मज़दूरी करने हैदराबाद जैसी दूरस्थ जगहों पर जाते हैं।

गजपति ओडिशा के दक्षिणी ज़िलों में से एक है। ज़िले की 51 प्रतिशत जनसंख्या आदिवासियों की है। इलाका पहाड़ी और घने जंगल वाला है।

दक्षिणी सिरे पर परलाखेमुंडी ज़िला मुख्यालय है।

खबरों के अनुसार, नक्सली 90 के दशक से ज़िले में सक्रिय होना शुरू हुए हैं। 24 मार्च 2006 को माओवादियों ने आर. उदयगिरी जेल में दर्ज 40 से अधिक कैदियों को मुक्त करा लिया था। उन्होंने दो सरकारी अधिकारियों का अपहरण भी कर लिया था (जिन्हें बाद में सुरक्षित छोड़ दिया गया था) और जेल एवं एक स्थानीय ओडिशा विशेष सशस्त्र बल शिविर व पुलिस स्टेशन से शस्त्र लूटे थे। वहाँ 16 फरवरी 2009 को एक बारूदी सुरंग में हुए विस्फोट में 12 विशेष ऑपरेशन समूह कर्मियों के घायल होने की, 2009 के विधान सभा चुनाव के बहिष्कार के लिए आवाहन की और 11 जुलाई 2009 में माओवादियों द्वारा एक जंगल गश्त कार्यालय को उड़ाने की खबरें भी थीं। एक मोबाइल टॉवर विस्फोट और 27 दिसम्बर 2009 को हुए ओडिशा बन्द के दिन देर रात को गजपति ज़िले में नालाघाट के पास ओडिशा राज्य सड़क परिवहन निगम की चार यात्री बसों पर हमले होने की खबरें भी थीं।



फोटो: <http://canadazone.com/albumindia-gajapati>

ज़िले में केन्द्रीय रिज़र्व पुलिस बल (सी.आर.पी.एफ.) और राज्य पुलिस के एस.ओ.जी. की भारी तैनाती हुई है। सी.आर.पी.एफ. द्वारा निर्दोष गाँववालों के उत्पीड़न और उन पर 'नक्सलियों से जुड़े होने' के झूठे आरोप लगाने की खबरें इलाके में आम हैं। नवम्बर 2008 में पास की पानीगोण्डा पंचायत में सी.आर.पी.एफ. ने एक आदमी को मार दिया था और दूसरे को गम्भीर रूप से घायल कर दिया था। ह्यूमन राइट्स फोरम आन्ध्र प्रदेश की तथ्य जाँच रपट से यह स्पष्ट हो गया था कि इन दोनों आदमियों का माओवादी गतिविधियों से कोई लेना-देना नहीं था। ग्राम पंचायत और पंचायत समिति के चयनित प्रतिनिधियों सहित अन्य स्थानीय नेताओं द्वारा सुरक्षा बलों की अनियमितताओं के विरोध में प्रदर्शन करने के कारण उन पर कई झूठे मामले भी दर्ज किए गए हैं। गैर-कानूनी हत्याओं की खबरें भी आई हैं।

जंगल के रास्ते में

जंगल में जाते हुए आरती और तीनों लड़कों की आँखों पर पट्टी बाँधी गई थी। गाँववालों ने बताया कि टांगिली और बालीपोंका के बीच में सैन्यदल को नाले पर रवि नामक एक अन्य गाँववाला मिला। वे अपनी खेतों की रखवाली कर रहे थे और चिड़ियों को भगाने के लिए आवाज़ें निकाल रहे थे। सुरक्षा बल ने आरोप लगाया कि आवाज़ें निकालकर वे माओवादियों को संकेत दे रहे थे, इसलिए उन्होंने उन्हें भी अपने साथ ले लिया। कुछ समय बाद उन्हें छोड़ दिया।

सुरक्षा कर्मी ने तीनों लड़कों को लौटने के लिए कहा। प्रसन्ना को रास्ते में कहीं छोड़ दिया गया, लेकिन दाकुआ और लालू साथ में रहे। उन्होंने कहा कि महिला के छोड़ देने पर ही वे वापस

जाएँगे। अन्त में उन्हें मजबूर किया गया कि वे बालीपोंका, जो कि बाँध के बहुत पास है, से गाँव वापस लौट जाएँ। बाँध के आगे एक पक्की सड़क है और वहाँ पर छापा टीम को ले जाने के लिए एक वाहन आने वाला था।

आरती माँझी ने बताया कि इसी समय एस.ओ.जी. और पुलिस बल ने उन्हें मुख्य समूह से अलग कर दिया और मुख्यालय तक जाने के लिए पुलिस वाहन के आने के कुछ समय पहले ही, जंगल में उनके साथ सामूहिक बलात्कार किया। बलात्कार करने के पहले अपराधियों ने उन्हें अपने मोबाइल पर अश्लील चित्र दिखाए। उनका भाई भी वहीं था, वह लगातार बलात्कार का विरोध करता रहा। आरती का मानना है कि पाँच या छह लोगों ने उनके साथ बलात्कार किया था। जब उन्होंने विरोध किया तो वे अपमानजनक भाषा और तानों का इस्तेमाल करते हुए बोले: 'अगर तुम एक आदमी के लिंग को नहीं सम्हाल सकती तो तुम राइफल बट कैसे सम्हालोगी।' बलात्कारियों की पहचान के बारे में आरती यह बताने में सक्षम हैं कि वे वर्दी में थे और उड़िया बोल रहे थे।

पलिस थाना. अडवा - १२ फरवरी

जिस दिन आरती व अन्यो को उठाया गया, उसी सुबह गाँव से कई लोग - पीड़ित के माता-पिता, गिरफ्तार किए गए दोनों लोगों के परिवारवाले, स्थानीय सरपंच, पंचायत समिति के सदस्य और गाँव के अन्य लोग - अपने आप पास के अडवा पुलिस थाने गए। गेट पर चौकीदारी कर रहे सी.आर.पी.एफ. के कर्मी ने उन्हें मोरचाबन्द पुलिस थाने के अन्दर नहीं जाने दिया और गाँववालों को पुलिस थाने के नज़दीक भी आने पर गोली मारने की धमकी दी।

गाँववाले दिन भर पुलिस थाने के बाहर इन्तज़ार करते रहे लेकिन उन तीनों को कहाँ रखा गया है, इस बारे में उन्हें कोई सूचना नहीं दी गई। शाम को उनसे कहा गया कि वे चले जाएँ वरना उन्हें मार दिया जाएगा। अगले दिन, उठाए गए तीनों लोगों को निर्दोष बताते हुए और उनका अता-पता पूछते हुए कलेक्टर को एक लिखित शिकायत दी गई। इस शिकायत-पत्र में लगभग 20 गाँववालों और स्थानीय राजनैतिक प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किए थे। इस शिकायत पर कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली।

सरपंच ने सूचना दी कि सागर, प्रमोद माँझी का ही दूसरा नाम है, दक्षा माँझी का दूसरा बेटा व आरती माँझी का भाई। प्रमोद माँझी के माता-पिता तथा गाँव के दूसरे लोगों ने स्वेच्छा से सूचना दी कि प्रमोद माँझी उन्हीं के गाँव का है। वह महुदा के एक स्कूल में दसवीं कक्षा में पढ़ाई करता था। दो बार फेल होने के बाद ट्यूशन या कुछ और करने के लिए उसने अपने घरवालों से पैसे माँगे। चूँकि परिवार आर्थिक सहायता प्रदान नहीं कर सका इसलिए उसने लगभग पाँच साल पहले घर छोड़ दिया था। परिवार नहीं जानता कि अब वह कहाँ है और वह गाँव वापस नहीं आया है, लेकिन उन्होंने सुना है कि वह माओवादियों में शामिल हो गया है।

पलिस संस्करण

गिरफ्तारी मेमो में आरती की गिरफ्तारी का समय 12 फरवरी शाम 4 बजे दिया गया है; स्टेशन डायरी में डी. मोहापात्र, जो कि मुकम्मिल ऑपरेशन का प्रभारी था और इस मामले का जाँच अधिकारी था ने 12 फरवरी की रात 9 बजे नोट किया है: 'एस.ओ.जी., स्टाफ और तीन नक्सलियों के साथ वापस आए और एक अकेली लोडिंग बैरल मज़ल को ज़ब्त किया गया।'

पुलिस थाने के गिरफ्तारी रिकॉर्ड दिखाते हैं कि तीनों लोगों पर निम्नलिखित धाराओं के तहत आरोप लगाए गए – भारतीय दण्ड संहिता की धारा 41-एस, 147, 148, 149, 435, 120-बी, 121, 121-ए, 124-ए, शस्त्र अधिनियम की 25/27, सार्वजनिक सम्पत्ति के नुकसान को रोकने का अधिनियम 3 और आपराधिक संशोधन अधिनियम 17। पी.एस. मामले की धारा अलग है (43, 45, 46 इत्यादि) लेकिन सभी की तारीख 28 दिसम्बर 2009 है और इसलिए ये संकेत देती है कि सभी मामले एक ही तारीख में दर्ज किए गए।

इन लोगों पर आरोप लगाया गया था कि गिरफ्तार किए गए तीनों लोग 28 दिसम्बर 2009 को गजपति-रायगढ़ ज़िले के बॉर्डर में स्थित मोहना ब्लॉक के रायपंका गाँव के पास हुए एक टेलीकॉम टॉवर के विस्फोट और राज्य परिवहन की चार बसों को जलाने में शामिल थे।

थाना के गिरफ्तारी रिकॉर्डों में यह अलग से नोट था कि 16 फरवरी 2010 को गुरझुली गाँव के बाबुला को भी इस मामले में गिरफ्तार किया गया था।

गाँववालों ने भी एक 'बाबुला' के बारे में उल्लेख किया था और बताया था कि उसे सुरक्षा कर्मी की वर्दी में यहाँ लाया गया था और उसने दूसरे गाँव में 'हेमन्त' के घर की पहचान की थी। यह माना जा सकता है कि 11 और 16 फरवरी के बीच बाबुला को अवैध हिरासत में रखा गया था (हमारे पास यह विवरण नहीं है कि उसे कब और कहाँ से उठाया गया), और दो मुख्य लोगों, जिनकी सुरक्षा बल तलाश कर रही थी, के घरों व परिवारवालों के बारे में बताने के लिए उसे लाया गया था।

गिरफ्तारी रिकॉर्डों के अनुसार, इन सभी गिरफ्तारियों का गवाह (अलग तारीखों में भी) एक ही व्यक्ति था – राजेश्वर पुजारी, अडवा का रहने वाला व सिमान्चल पुजारी का बेटा। लिखाई में एकरूपता, इन सभी गिरफ्तारियों का वही एक गवाह और उपयोग की गई स्याही इंगित करती है कि गिरफ्तारी रिकॉर्डों में प्रविष्टियों को फर्जी तरीके से बनाया गया है और अलग तारीखों की बजाय (जैसा कि रिकॉर्डों में दिखाया गया), एक ही दिन व एक ही समय पर किया गया हो सकता है।

जब जाँच टीम ने वर्तमान सब इंस्पेक्टर से आरती की गिरफ्तारी की वजह के बारे में पूछा था तो पहले उसने कहा कि उनका भाई माओवादी पार्टी का एक प्रमुख सदस्य था और इलाके की पार्टी के वरिष्ठ लोगों के साथ चला गया था और टॉवर को उड़ाने में शामिल था। जब इसका प्रतिरोध किया गया कि यह उनकी गिरफ्तारी के बारे में है, न कि उनके भाई की, उसने दावा किया कि आरती भी इसमें शामिल थी।

पुलिस रिकॉर्डों के अनुसार, गिरफ्तार किए गए तीनों लोगों को 13 फरवरी की शाम 3 बजे अदालत में पेश किया गया था। आरती से पूछा ही नहीं गया कि क्या उन्हें चिकित्सा जाँच या कानूनी प्रतिनिधित्व की ज़रूरत है। इस प्रकार उनका कोई वकील नहीं था। न ही उनके परिवार वाले जानते थे कि वे कहाँ हैं। उनको एक पेपर पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया, लेकिन मजिस्ट्रेट ने न तो कोई सवाल किया और न ही कोई चर्चा की कि कहीं उनके साथ कोई दुर्व्यवहार तो नहीं किया गया। (घटनाओं के बारे में उनके विवरण से यह संदेह होता है कि उसे मजिस्ट्रेट के सामने सचमुच पेश किया भी गया था या नहीं)।

जेल में प्रवेश करते हुए चिकित्सा जाँच के समय आरती ने राइफल बट की मार के कारण दर्द होने की शिकायत की थी। जेल फार्मासिस्ट ने भी पुष्टि की कि आरती ने यह बोला था और कहा कि उन्हें एक दर्दनिवारक और बाद में अन्य दवाइयाँ भी दी थीं।

फार्मासिस्ट व जेलर ने यह बताया कि नए बन्दियों के लिए यह आम है कि पुलिस हिरासत के दौरान हुई मारपीट की शिकायत करें। अधिकतर नए कैदियों को जेल में पहली बार लाते समय दवाई की ज़रूरत होती है। पर वे (जेलर और फार्मासिस्ट) इसे एक सामान्य घटना की तरह लेते हैं और उपचार उपलब्ध करवाने तक अपनी ज़िम्मेदारी को सीमित कर लेते हैं। वे इसे मानव अधिकारों के हनन या कानून के उल्लंघन के रूप में नहीं देखते और इसलिए हस्तक्षेप भी नहीं करते।

नागरिक अधिकारों का उल्लंघन

सुरक्षा बलों द्वारा की गई गिरफ्तारियाँ मनमाने ढंग से की गई लगती हैं, क्योंकि जब उन्हें वे लोग नहीं मिले जिनको वे तलाश रहे थे (आज़ाद और सागर), तो वे जिस किसी को भी, जो उन्हें मिल गए, उठा लाए। उन्होंने उठाए गए ऐसे लोगों को तक छोड़ दिया था जो बाद में 'आत्मसमर्पण करने वाले माओवादी विद्रोहियों' की तरह प्रस्तुत किए गए। लालू माँझी, जिसने एक लम्बी दूरी तक सुरक्षा बल का पीछा किया था, उसे फरवरी 2010 में पकड़ा भी नहीं, लेकिन बाद में मार्च 2010 में जब उसने आत्मसमर्पण कर दिया तो उसे सी.पी.आई.-माओवादी पार्टी के एक कैडर की तरह पेश किया गया। इसी तरह, आरती माँझी के खिलाफ कोई विशेष शिकायत या सबूत नहीं थे। लोगों को मनमाने ढंग से

उठाया और यूँ ही छोड़ दिया जा रहा था। अधिकारियों द्वारा निर्धारित 'सफल' छापे के मापदण्ड को पा लेना ही एकमात्र उद्देश्य दिखाई पड़ता है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के दिशानिर्देशों और कानून का उल्लंघन करते हुए, अभियुक्त महिला को बिना किसी महिला सुरक्षा कर्मी के रात में उठाया गया। किसी महिला की नज़रबन्दी और गिरफ्तारी से सम्बन्धित सभी नियमों का उल्लंघन किया गया, जब कि उससे कोई तात्कालिक खतरा भी नहीं था, और वह अपने घर पर शान्ति से रोज़मर्रा के काम कर रही थी।

मनमाने ढंग से की गई गिरफ्तारियों से सभी के मन में असुरक्षा पैदा होती है। सुरक्षा बल और पुलिस इन 'गिरफ्तारियों' से कुछ सफलता का दावा कर लेते हैं लेकिन यह इलाके के निवासियों के लिए जगह को और अधिक सुरक्षित नहीं बना सकता। दरअसल, मनमाने और गैर-कानूनी तरीके से नज़रबन्दी करने का एक इरादा आम लोगों को आतंकित करना है ताकि उन्हें माओवादी सहानुभूतियों से दूर रखा जा सके।

नागरिक जीवन की परिपाटी बुरी तरह से हिल चुकी है। इस इलाके में रहने मात्र से किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जा सकता है। लोग कहते हैं कि उन्होंने उन पर 'शक' किए जाने के कारण 'आत्मसमर्पण किया है', इसलिए नहीं कि उन्होंने कोई अपराध किया है। महिलाएँ जेल में बन्द परिवार के सदस्यों और रिश्तेदारों की बढ़ती संख्या के बारे में चिन्तित रहती हैं। लोगों को अपने आपको गिरफ्तार होने से बचाना पड़ता है।

वहाँ इस सामूहिक बलात्कार के चश्मदीद गवाह मौजूद थे, लेकिन वे देखे हुए को साफ बताने से डर रहे थे। ज़िले में आतंक का माहौल उनको

ऐसा करने से रोकता है। कुछ गवाह स्वयं ही जेल में हैं और उन्हें हत्या की धमकी दी जा रही है।

लालू माँझी को ही लें, उसकी बहन और चचेरा भाई एक अनिश्चित भविष्य के साथ जेल में हैं, जबकि एक दूसरा भाई अपने माओवादी सम्पर्कों के कारण 'वॉन्टेड' है। अपने आपको गिरफ्तारी से बचाने के लिए ही उसने 'आत्मसमर्पण' किया था। अपनी बहन के साथ हुए सामूहिक बलात्कार का एक असहाय गवाह होने के कारण वह न केवल सदमे में है बल्कि उसे न्याय की भी कोई उम्मीद नहीं है। अधिकारियों के अत्याचारों के खिलाफ बोलकर वह अपने लिए एक और खतरा मोल लेने की हिम्मत करने लायक नहीं बचा।

पहले गाँव, जादिंगी से उठाए गए लोगों की गिरफ्तारी शाम 4 बजे और टांगिली गाँव से उठाए गए श्यामा माँझी की गिरफ्तारी शाम 5 बजे दिखाई गई है। यह उठाने के वास्तविक समय से 12 घंटे बाद का समय है। यह दिखाता है कि सुरक्षा बल गिरफ्तारी के वास्तविक समय को छुपाने की कोशिश कर रहे हैं।

जब गिरफ्तार लोगों को गाँवों में उनके घरों से उठाया गया तो उनके घरवालों को कोई हिरासती मेमो नहीं दिया गया। गिरफ्तारी के समय स्थानीय गाँववालों या उनके घरवालों को गवाह बनाने की बजाय, एक ऐसे व्यक्ति से गवाह के बतौर हस्ताक्षर कराए गए, जो इन लोगों को नहीं पहचानता था। घरवालों को कोई सूचना नहीं दी गई, जबकि वे दिनभर थाने के बाहर अपने बच्चों या पतियों के बारे में जानकारी पाने का इन्तज़ार करते रहे।

'बाबूला' के बारे में प्राप्त अधूरी सूचना भी यही दिखाती है कि महिलाओं और पुरुषों के लिए गिरफ्तारी और नज़रबन्दी के दिशानिर्देशों का

बड़ी आसानी से उल्लंघन किया जा रहा है। बन्दियों के साथ यौन अत्याचार, शारीरिक यातनाएँ और झूठी मुठभेड़ें होने का खतरा बहुत ज़्यादा है। आरती को मजिस्ट्रेट और जेल अधिकारियों के समक्ष अपनी बात, कि उसके साथ बलात्कार और बुरा बर्ताव किया गया था, कहने का न तो कोई मौका दिया गया न ही ऐसी अनुकूल स्थिति बनाई गई।

यद्यपि यह ज़रूरी है कि विचाराधीन कैदियों को हर 15 दिन में कोर्ट में पेश किया जाना चाहिए, लेकिन बलात्कार के मामले में याचिका दर्ज होने तक के सात महीने से अधिक की न्यायिक हिरासत के दौरान आरती को केवल एक बार कोर्ट में पेश किया गया।

वर्तमान स्थिति

जून 2011 में, आर. उदयगिरि, प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट ने मामले को संज्ञान में लेने से मना कर दिया क्योंकि 'सुरक्षा बलों द्वारा सामूहिक बलात्कार के आरोपों की जाँच के लिए उन्हें पर्याप्त आधार नहीं मिले।' आर. उदयगिरि के आदेशों पर पुनः विचार करने के लिए आरती द्वारा दायर की गई याचिका ओडिशा उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार कर ली गई है लेकिन अभी तक वह सुनवाई के लिए नहीं आई है।

मार्च 2012 में माओवादियों द्वारा अपहृत इटालवी पर्यटकों को रिहा करने के बदले की गई 13 माँगों में से चौथी माँग थी कि आरती माँझी के सामूहिक बलात्कार, झूठी मुठभेड़ों के मामलों और इलाके में हिरासत में होने वाली मौतों के लिए ज़िम्मेदार पुलिस अधिकारियों को गिरफ्तार किया जाए और मुकदमा चलाया जाए।

माओवादियों से सहानुभूति रखने वालों सहित 32 आदिवासियों की रिहाई भी एक प्रमुख माँग थी, और आरती माँझी का नाम भी उस सूची में शामिल था। बहरहाल, बन्धक अदला-बदली के दौरान उनको रिहा नहीं किया गया।

दिसम्बर 2009 में बस जलाने के मामले में फरवरी 2010 में गिरफ्तार हुए आरती माँझी और अन्य लोगों को मई 2012 में बरी कर दिया गया। लेकिन छह अन्य मामले जारी हैं: चार दूसरी बसें जलाने और मोबाइल टॉवर उड़ाने वाले। उच्च न्यायालय ने आरती के खिलाफ आठ मामलों में त्वरित परीक्षण करने के लिए ज़िला न्यायालय को निर्देशित किया था। इस रपट को लिखते समय तक उन्हें छह केसों में बरी कर दिया गया है।

जानकीबाई का हिरासत में बलात्कार: रक्षक ही भक्षक

“जो भी हो रहा है वह सही हो रहा है। यदि तुमने पैसे दे दिए होते तो ऐसा नहीं होता”, पुलिसवाले ने बलात्कार के दौरान उनसे कहा, उन्हें मुँह बंद रखने की चेतावनी दी और धमकाया कि वो झूठे मामलों में उनके बेटों को फँसा देंगे।

2 जून 2009 को 50 वर्षीय दलित महिला जानकीबाई के साथ मध्य प्रदेश के बैतूल ज़िले के आमला थाने में चार पुलिसवालों ने बलात्कार किया। उनकी बहू द्वारा लगाए गए दहेज सम्बन्धी प्रताड़ना की शिकायत के मामले में वह आरोपी थीं। पुलिसवाले मामले को रफ़ा-दफ़ा करने का लालच देकर उनसे रुपयों की माँग कर रहे थे। जब जानकीबाई के परिवार ने रुपए देने से इंकार कर दिया तो उन्हें उपरोक्त मामले में आरोपित किया गया। उनकी ज़मानत टुकरा दी गई और उनको न्यायिक हिरासत में भेजे जाने का आदेश हुआ। पुलिस उन्हें बैतूल जेल ले जाने की बजाय आमला थाने में वापस ले आई। यहाँ चार पुलिसवालों ने, जिनमें थाना प्रभारी भी शामिल है, थाने में जानकीबाई के साथ बलात्कार किया।

सिलसिलेवार घटनाक्रम:

2 जून 2009 को जानकीबाई, उनके पति और छोटे बेटे को आमला थाने में उनकी बहू द्वारा

धारा 498-ए के अन्तर्गत की गई शिकायत के मामले में बुलाया गया था। इससे पहले, 31 मई को, थाना प्रभारी और असिस्टेंट सब-इंसपेक्टर उनके घर आए थे और जेल जाने से बचने के एवज में 10,000 रुपए माँग रहे थे। उस दिन परिवार के लोग ज़मानत की कोशिश करने के लिए एक ज़मानतदार को साथ लेकर खुद को पुलिस के हवाले करने गए थे। वे सुबह 10 बजे के आसपास थाने पहुँचे। पुलिस ने फिर से उन लोगों से यह कहते हुए रुपए माँगे कि यदि ज़मानत चाहिए तो उन्हें पैसे देने होंगे। जानकीबाई ने कहा कि वे गरीब महिला हैं और उनके पास रुपए नहीं हैं।

उन लोगों को औपचारिक रूप से गिरफ्तार किया गया और जानकीबाई को तब से ही आमला पुलिस थाने में हिरासत में रखा गया था। वे, उनके बेटे और उनके पति को मुलताई कोर्ट ले जाया गया। मुलताई कोर्ट में ज़मानत की अर्ज़ी टुकरा दी गई और उनको न्यायिक हिरासत में

भेज दिया गया। उन लोगों के जेल वारंट बनाए गए।

आदमियों को मुलताई जेल ले जाया गया जबकि महिला को बैतूल जेल ले जाया जाना था क्योंकि मुलताई जेल में महिला वॉर्ड नहीं था। परन्तु जानकीबाई को बैतूल की बजाय आमला थाने वापस ले जाया गया।

शरुआत से अन्त तक गैर-कानूनी कार्यवाही:

यह गिरफ्तारी अपने आप में मनमानी प्रतीत हाती है: केवल एक शिकायत के आधार पर पहले बड़े बेटे को गिरफ्तार किया गया था, उसके बाद जब वह जमानत पर रिहा हो गया तो उसी शिकायत पर पुलिस ने बाकी सहआरोपियों को गिरफ्तार करने का निर्णय लिया। उन सब को एक ही समय पर गिरफ्तार क्यों नहीं किया गया?

साफ दिखता है कि पुलिस ने रिश्वत माँगी और न मिलने पर नाराज़ हो गए।

जिस दौरान जानकीबाई आमला थाने में रहीं उस पूरे समय एक भी महिला कांस्टेबल वहाँ नहीं थी। कोई महिला कांस्टेबल उनके साथ मुलताई कोर्ट नहीं गई थी। यह कानून और महिला बंदी के कानूनी अधिकार का उल्लंघन है।

जमानत ठुकराए जाने के बाद महिला कैदी को आमला थाने ले जाने की बजाय बैतूल ले जाना चाहिए। पुलिस को न्यायाधीश से यह विशेष प्रार्थना करनी चाहिए थी कि बैतूल जेल में देर से प्रवेश के लिए विशेष अनुमति प्रदान करें। पर ऐसा किया नहीं गया। कैदियों के साथ व्यवहार के लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए दिशानिर्देश के अनुसार ऐसे मामलों में जहाँ पुलिस को देर से जेल पहुँचने का अनुमान हो, वहाँ वे

न्यायाधीश से जेल में देरी से प्रवेश के लिए आदेश पारित करने के लिए विशेष अनुरोध कर सकते हैं। पुलिस का कहना है कि वो जानकीबाई को बैतूल जेल इसलिए नहीं ले जा सके क्योंकि शाम को 6.30 से ज्यादा का समय हो चुका था। परन्तु जेल नियमावली के नियम 285 में साफ-साफ कहा गया है कि महिला के पास यदि जेल वारंट है तो उसे किसी भी समय जेल में प्रवेश दिया जाएगा।

यह जानते हुए कि थाने में कोई महिला कांस्टेबल नहीं है जानकीबाई को वापस आमला थाने लेकर आना और रात को थाने में ही रखना गम्भीर गलती है और थाना प्रभारी द्वारा गैर-कानूनी/ गलत तरीके से बंदी बनाने का मामला है।

जानकीबाई 3 जुलाई 2009 को जेल में प्रस्तुत हुई – आमला थाने द्वारा हिरासत में लिए जाने के 24 घंटे से अधिक समय बीत जाने के बाद, और न्यायिक हिरासत में भेजे जाने के 19 घंटे से ज्यादा वक्त गुज़रने के बाद। पूरे समय उनके साथ कोई महिला कांस्टेबल नहीं थी।

बलात्कार

2 जुलाई 2009 को रात के लगभग 1 बजे असिस्टेंट सब-इंसपेक्टर ने जानकीबाई को जगाया और थाने के अंदर वाले कमरे में जाकर सोने को कहा। जब जानकीबाई ने यह समझाने की कोशिश की कि वे उनकी इजाज़त से ही मुख्य कमरे में सोई थीं तो वह ज़बरदस्ती उनको घसीटते हुए अंदर के कमरे में ले गया।

उनकी साड़ी खींचकर खोल दी और एक तरफ फेंक दी। जिस गमछे पर वे सो रही थीं, उसका उपयोग उनके हाथ पीछे की ओर बाँधने के लिए किया गया ताकि उनकी चूड़ियाँ न टूटें। थाना प्रभारी ने किसी को कहा कि कंडोम (फुग्गा)

लाए, जिसका उपयोग किया गया। दो पुलिसवाले दरवाज़े पर खड़े थे जबकि दो कमरे में थे। एक ने बलपूर्वक उनके हाथ पकड़े और दूसरों ने बारी-बारी से बलात्कार किया। उनके साथ चार पुलिसवालों ने बलात्कार किया, जिनमें थाना प्रभारी (टी.आई.) ठाकुर, असिस्टेंट सब-इंस्पेक्टर मिश्रा और दो अन्य पुलिसवाले थे। ये सभी ऊँची जाति के थे। बाद के दो पुलिसवालों को वे नाम से नहीं जानती थीं लेकिन उनकी पहचान और शिनाख्त कर सकती थीं।

महिला ने अपने बयान में कहा कि उनके साथ बलात्कार के दौरान वो लोग लगातार कह रहे थे – “जो हो रहा है वह ठीक हो रहा है। तुम पैसे दे देती तो ऐसा नहीं होता...” उन्होंने उनको चेतावनी दी कि बलात्कार के बारे में किसी को कुछ न बताएँ, वरना उनके बेटों को झूठे मामलों में फँसाकर जेल की सलाखों के पीछे डाल देंगे।

इसके बाद

3 जून की दोपहर जानकीबाई को ट्रेन से बैतूल ले जाया गया। तब भी उनके साथ कोई महिला नहीं थी। बैतूल में ये लोग पुलिस लाइन गए। वहाँ वे एक महिला आरक्षक से मिले जो उनके साथ बैतूल जेल तक गई थी। जेल रजिस्टर के मुताबिक, दोपहर 1.10 बजे जानकीबाई को जेल में प्रस्तुत किया गया था। महिला बैरक में ले जाए जाने पर जानकी बाई ने कुछ देर आराम किया। फिर उन्होंने जेल अटेंडेंट और कंपाउंडर के सामने बलात्कार की घटना का खुलासा किया और पेट के निचले हिस्से में हो रहे दर्द के लिए दवा माँगी। इन लोगों ने घटना के बारे में जेलर को सूचित किया, जो कि उप-जेलर के साथ फौरन ही महिला से मिलने के लिए आए। पूरा विवरण सुनने के बाद जेलर ने तुरन्त ही

पुलिस अधीक्षक (एस.पी.) को फोन पर जानकारी दी।

एस.पी. ने सब डिवीज़नल ऑफीसर पुलिस (एस.डी.ओ.पी.) और ए.डी.एस.पी. को जेल भेजा। वे जेलर से मिले और व्यक्तिगत रूप से जानकीबाई से भी घटना के बारे में जाना। उस शाम, तैनात महिला जेल अटेंडेंट की उपस्थिति में एस.डी.ओ.पी. ने जानकीबाई के कपड़े हटाकर उनके शरीर के घाव देखे। इस तथ्य जाँच टीम को मीडिया ने बताया कि उस रात कलेक्टर और एस.पी. भी जानकीबाई से मिलने जेल पहुँचे थे।

पुलिस अधिकारियों ने जेलर से महिला द्वारा दिए गए घटना के विवरण के आधार पर लिखित बयान लेने को कहा, जिसके आधार पर वे एफ.आई.आर. दर्ज कर सकें। जेलर ने कहा कि उन्होंने आधा बयान उस रात ही लिख लिया था और आधा अगले दिन पूरा किया और भेज दिया। जेलर ने यह भी बताया कि उसने आर.आई. को फोन करके पुलिस रक्षक दल भेजने को कहा था ताकि जानकीबाई को मेडिकल जाँच के लिए भेजा जा सके क्योंकि पुलिस अभिरक्षा के बिना उन्हें बाहर नहीं भेजा जा सकता था। हालाँकि, किसी को भेजा ही नहीं गया।

4 जून को दोपहर के आसपास जेलर ने सब डिवीज़नल मजिस्ट्रेट (एस.डी.एम.) को एक पत्र भेजकर जानकीबाई की मेडिकल जाँच करवाने की व्यवस्था करने की प्रार्थना की। बाहरी दबाव (मीडिया और पुलिस का) के डर के कारण जेलर ने सुझाया कि मेडिकल परीक्षण के लिए एक मेडिकल टीम को जेल में ही भेजा जाए। आखिरकार डॉक्टरों की टीम (1 स्त्रीरोग विशेषज्ञ, 2 नर्स और 1 बाई) दोपहर 12 बजे जेल में पहुँची। मेडिकल टीम ने महिला के कपड़े एकत्रित किए

(लेकिन गमछा नहीं लिया गया जिसे जानकीबाई ने घटना के बाद अपने शरीर पर लपेटा था) और मेडिकल परीक्षण किया। मेडिकल रपट, सीलबंद पैकेट में कपड़े और योनि फाहे की सीलबंद स्लाइड जेलर को दी गई।

यह मेडिकल परीक्षण घटना के 32 घंटे बाद और पीड़िता द्वारा बलात्कार के बारे में बताए जाने के 18 घंटे के बाद किया गया। मेडिकल परीक्षण की रपट काफी अनिश्चित है। जब राज्य महिला आयोग के सदस्यों (जिन्होंने अगले दिन एक और मेडिकल परीक्षण करवाया) ने डॉक्टर से उसकी दुलमुल रपट और विवरण में घालमेल के बारे में सवाल किए तो उसने सदस्यों को बताया कि उसने बलात्कार की जाँच नहीं की थी बल्कि रूटीन मेडिकल परीक्षण किया था।

जेलर ने भी जानकीबाई का लिखित बयान, अपने पत्र के साथ एस.पी., कलेक्टर और वरिष्ठ जेल अधिकारियों को भेजा था। इस दस्तावेज़ के आधार पर 4 जून 2009 को दोपहर 3 बजे अनुसूचित जनजाति कल्याण थाने में एफ.आई.आर. दर्ज की गई।

पुलिस अब कहती है कि वो कोई कार्यवाही (जैसे मेडिकल परीक्षण करना, महिला का बयान लेना या अपराध की जगह को सीलबंद करना) तब तक नहीं कर सकती थी जब तक कि एफ.आई.आर. न हो। यानी सारी देरी के लिए जेलर को ही दोषी ठहराया जा रहा है जबकि जेलर ने घटना के बारे में जानते ही तत्परता के साथ ज़िले के वरिष्ठ पुलिस अधिकारी, एस.पी. को फोन किया था।

सबत इकट्ठा करने में शिथिलता

जाँच और साक्ष्य के लिए जानकीबाई द्वारा 2 जून को पहने गए ब्लाउज़ और साड़ी को ही ले जाया गया। उनका गमछा नहीं ले जाया गया जबकि पूरे समय वह जानकीबाई के पास ही था, थाने में और जेल में भी। बलात्कार होने के बाद जानकीबाई ने इस गमछे से अपने आपको ढँका था और इसे कमर के चारों ओर लपेटा था। इसका उपयोग पुलिसवालों ने उनके हाथ बाँधने के लिए भी किया था। जानकीबाई द्वारा दिए गए प्रत्येक बयान में इस बारे में बताया गया है।



दैनिक भास्कर, भोपाल, 5 जून 2009 से

इसके बावजूद पुलिस या जाँच टीम ने इसको सबूत में शामिल नहीं किया।

जब यह तथ्य जाँच टीम गाँव में जानकीबाई से उनके घर पर मिली थी, तब भी उन्होंने इस गमछे के बारे में बताया था। उन्होंने दिखाया कि वे तब भी उसे पेट पर बाँधे हुए थीं क्योंकि घटना के बाद से ही उन्हें पेट के निचले हिस्से में दर्द हो रहा था। जब उनसे पूछा कि उन्होंने अपने कपड़ों के साथ गमछा क्यों नहीं दिया तो उन्होंने कहा कि किसी ने वह माँगा ही नहीं। घर वापस आने के बाद उन्होंने गमछा धो दिया था।

इस बारे में जब तथ्य जाँच टीम ने सरकारी जाँच टीम से बात की तो उनका जवाब था कि यह तो महिला द्वारा पुलिस को दिया जाना चाहिए था और यह महिला की गलती है कि उसने गमछा धो दिया।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि जानकीबाई ने बार-बार गमछे और घटना के दौरान उसके उपयोग का जिक्र किया है। अपराध के बारे में कंपाउंडर, जेलर, राज्य महिला आयोग द्वारा दिए गए विवरणों में से हरेक में गमछे का जिक्र है। यह स्पष्ट तौर पर पुलिस की ज़िम्मेदारी थी कि वह इस महत्वपूर्ण साक्ष्य को जमा करती। सबूतों को सावधानी से इकट्ठा करने की ज़िम्मेदारी सीधे-सीधे पुलिस की है न कि पीड़ित की (जो इस मामले में निरक्षर भी हैं), जो शायद बलात्कार सम्बन्धी कानूनों और सबूत एकत्रित करने के बारे में जान भी सकते हैं और नहीं भी। यह तथ्य कि पुलिस ने अपराध के एक ज़रूरी सबूत को जमा नहीं किया, उनकी गलती को बताता है। बाद में, तथ्य जाँच टीम के सदस्यों द्वारा यह मुद्दा ए.डी.एस.पी. हरदा के सामने उठाने के बाद पुलिस ने 24 जून 2009 को जानकीबाई से यह गमछा ज़ब्त कर लिया।

राज्य महिला आयोग

4 जून 2009 को राज्य महिला आयोग की दो सदस्य सुश्री सुषमा जैन और डॉ. कमला वाडिमा (चिकित्सक) जानकीबाई से जेल में मिलीं। उन्होंने जानकी बाई का बयान लिया और साथ ही उनका शारीरिक परीक्षण भी किया। इसके बाद प्रेस को दिए गए बयान में उन्होंने कहा कि उनको जानकीबाई के कथन पर पूरा विश्वास है और जानकीबाई की शारीरिक और भावनात्मक स्थिति दर्शाती है कि उन्हें किन हालातों से गुज़रना पड़ा है। सदस्यों ने यह भी कहा कि इस मामले में सच को दबाने का ज़बरदस्त प्रयास किया जाएगा परन्तु पीड़िता के लिए न्याय सुनिश्चित करने के लिए वो सशक्त कदम उठाएँगी। उन्होंने जानकीबाई को भी प्रेस को बयान देने को प्रोत्साहित किया।

राज्य महिला आयोग की सदस्य और चिकित्सक डॉ. कमला वाडिमा ने अपने बयान में यह भी कहा कि सरकारी मेडिकल जाँच के साथ समस्या थी और परीक्षण उचित तरीके से नहीं किया गया था।

दिन में

दिन में ज़मानत याचिका पर सुनवाई के लिए जानकीबाई को मुलताई न्यायालय ले जाया गया। रास्ते भर उनके साथ दो महिला कांस्टेबल और एक महिला पुलिस इंस्पेक्टर थी। पुलिस वैन में जानकीबाई को आमला थाने लाया गया। यहाँ एस.डी.ओ.पी. और अन्य पुलिस अधिकारियों की उपस्थिति में तहकीकात की गई। उन्होंने पीड़िता को अपराध की जगह पहचानने को कहा। उनसे पूछा गया कि क्या वो थाने में किसी को पहचान सकती हैं। जानकीबाई के अनुसार, उन लोगों में से कोई भी उस समय थाने में नहीं दिखा जो अपराध की रात मौजूद थे – थाना प्रभारी,

ए.एस.आई., और दो अन्य पुलिसवाले। उन्होंने यह भी बताया कि उनसे एक कोरे कागज़ पर अँगूठे का निशान भी लिया गया। इस तहकीकात के दौरान पीड़िता के परिवार का कोई सदस्य या उनका वकील उनके साथ नहीं था। पूरी प्रक्रिया का वीडियो भी बनाया गया।

यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि अपराध की जगह की पहचान और मौका-मुआयना जुर्म होने के तीन दिन बाद और बलात्कार की घटना के सामने आने के दो दिन बाद किया गया।

बलात्कार के अभियुक्त इस दौरान थाना प्रभारी थे और थाने में सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने का उनके पास पूरा मौका था।

5 जून की शाम जानकी बाई को ज़मानत मिल गई थी। पर देर हो जाने के कारण उनको वापस जेल लाया गया और 6 जून 2009 को रिहा किया गया।

एस.डी.ओ.पी. ने फॉरेंसिक जाँच के लिए जेल अधिकारियों से मेडिकल रपट और स्लाइड ले ली थी।

जाँच और याचिका

पुलिस ने एक विभागीय जाँच शुरू की। शुरुआत में जाँच के लिए गठित टीम में बैतूल के दो स्थानीय पुलिस अधिकारी ही थे। बाद में इसको विस्तार देते हुए अन्य पुलिस अधिकारियों को भी शामिल किया गया, लेकिन कोई गिरफ्तारी नहीं हुई। थाना प्रभारी और ए.एस.आई. का तबादला दूसरे ज़िलों में कर दिया गया लेकिन किसी को सस्पेंड या लाइन अटैच नहीं किया गया। बाकी दो अभियुक्त उसी थाने में ड्यूटी करते रहे।



नवदुनिया, भोपाल, 10 जून 2009 से

चार पुलिसवालों के खिलाफ एफ.आई.आर. दर्ज होने के बावजूद भी केवल तीन के विरुद्ध बलात्कार का मामला दर्ज किया गया और थाना प्रभारी को बचाते हुए उसके विरुद्ध केवल छोटी-मोटी धाराओं जैसे, कर्तव्य में चूक आदि का मामला दर्ज किया गया। इतना ही नहीं पुलिस को अभियुक्तों के विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट जारी करने में दो महीने से ज़्यादा लग गए। यह भी राज्य स्तर और स्थानीय स्तर पर महिला संगठनों और दलित अधिकार संगठनों के लगातार विरोध प्रदर्शन और बढ़ते दबाव के कारण हो पाया।

जैसा कि पहले बताया गया है, थाना प्रभारी के खिलाफ बलात्कार का मामला दर्ज नहीं किया गया बल्कि हल्की-फुल्की धाराएँ लगाई गईं। कोई भी यह देख सकता है कि यहाँ किस तरह से जातीय समीकरण हावी हुए, जहाँ पीड़िता दलित महिला है वहीं ऊँची जाति से ताल्लुक रखने वाले पुलिस वालों पर हल्के आरोप लगाकर उन्हें बचा लिया गया। महिलाओं और दलितों के खिलाफ प्रचलित पूर्वाग्रहों का उपयोग करते हुए

यह अफवाह फैलाई गई कि लगाए गए सभी आरोप झूठे हैं और किसी और फायदे से प्रेरित हैं।

जब स्थानीय समूहों (मध्य प्रदेश महिला मंच और श्रमिक आदिवासी संगठन) ने मध्य प्रदेश हाई कोर्ट की जबलपुर पीठ में एक याचिका लगाई तब जाकर, थाना प्रभारी के विरुद्ध बलात्कार के आरोप शामिल किए गए और फरार बताए जा रहे तीन अन्य अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया।

यह मामला स्थानीय, ज़िले और राज्य स्तर पर और साथ ही साथ राष्ट्रीय स्तर पर भी सामने आया। इसके बावजूद भी इस तरह के गम्भीर अपराध के खिलाफ कोई सरोकार रखने वाला आधिकारिक बयान मुख्यमंत्री के दफ्तर या किसी अन्य उच्च अधिकारी की ओर से नहीं आया।

कानून के रक्षकों से अधिक जवाबदेही की अपेक्षा जानकीबाई ने इस मामले को सामने लाकर बड़ा साहस दिखाया है। उन्होंने और उनके परिजनों ने बयान वापस लेने के लिए डाले गए हर तरह के दबाव का सामना भी किया। उन पर दबाव बनाने की कोशिश में शामिल हैं: शिकायत वापस लेने के लिए रिश्वत देने की कोशिश, उनको निशाना बनाते हुए मामले के बारे में भ्रामक जानकारी फैलाना, उनके कथन की सत्यता पर सवाल उठाना, उनके चरित्र को बदनाम करना और उनके व उनके परिवार के जीवन और रोज़ीरोटी को समाप्त करने की धमकी देना।

इससे यह बात सामने आती है कि इस तरह के मामलों में, जहाँ वंचित तबके की दलित महिला तथाकथित कानून के रखवालों का सामना कर रही है और चुनौती बन गई है, वहाँ कार्यवाही के लिए स्पष्ट दिशानिर्देशों की अत्यन्त आवश्यकता है। यहाँ खास यह है कि पुलिस ही मामले में

अभियुक्त है और पुलिस ही कानून लागू करने वाली और जाँच करने वाली संस्था है। जब इस तरह के मामले दर्ज होते हैं, तब मामला केवल आरोपी व्यक्ति का ही नहीं रहता बल्कि यह पूरे विभाग और राज्य के खिलाफ भी मामला बन जाता है। विभागीय एकता के कारण पुलिसवाले अक्सर अपने आरोपी सहकर्मियों से सहानुभूति निभाते हैं। फलस्वरूप सबूतों को मिटाने का जुर्म अनदेखा रह जाता है।

जवाबदेही ऊपर तक जाती है

एक बार जब बलात्कार का मामला जेल में प्रकाश में आया, जेलर ने जिस व्यक्ति को सबसे पहले सूचित किया वो था पुलिस अधीक्षक (एस.पी.)। एस.पी. और कलेक्टर को फौरन ही कार्यवाही सुनिश्चित करनी थी लेकिन इसकी बजाय बेवजह की जाँच और बिना कार्यवाही के मामले को भटकाया गया। एस.पी. ही अपने अधीन थानों के लिए उत्तरदायी होता है। उनके अधीन थानों में से एक में हुए बलात्कार और लम्बे समय तक अभियुक्तों के खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं होना स्पष्ट तौर पर दर्शाता है कि कार्यवाही और जाँच में ढील दी जा रही है।

राज्य महिला आयोग की सदस्यों ने भी बताया था कि पीड़िता की मेडिकल जाँच में देरी की गई थी और जाँच सही तरीके से नहीं की गई थी। इस अधकचरे काम के लिए किसको दण्डित किया जाएगा?

वैसे राज्य महिला आयोग इस मामले में महिला के समर्थन में खड़ा तो हुआ और उसने पुलिस की भूमिका पर सवाल भी उठाए लेकिन अभियुक्तों को पकड़ने के लिए दबाव डालने में उनकी ओर से बहुत ही कम ज़ोर लगाया गया।

राज्य सरकार और प्रशासन से भी यह सवाल अवश्य ही पूछे जाने चाहिए कि इस तरह के गम्भीर अपराधों में इस कदर संवेदनहीन तरीके से काम क्यों किया जाता है? राज्य सरकार द्वारा कार्यवाही करने में की गई देरी और निष्कर्षहीन जाँच के बारे में कोई सवाल क्यों नहीं उठते? ऊँची जाति के थाना प्रभारी के विरुद्ध बलात्कार का आरोप लगाने के लिए उच्च न्यायालय में याचिका लगाने और विरोध प्रदर्शन करने की ज़रूरत क्यों होनी चाहिए?

संघर्ष जारी है...

2012 में पुलिसवालों के खिलाफ मामला जारी है, प्राथमिक अभियुक्त ज़मानत पर बाहर हैं, और जानकीबाई को न्याय के लिए संघर्ष करते हुए तीन वर्ष से अधिक का समय हो गया है। वकीलों और पुलिसवालों के लम्बे-चौड़े दस्तों का सामना कर रही इस अकेली महिला पर और उनके परिवार पर कई तरह के दबावों के बावजूद वे लगातार प्रतिकूल परिस्थितियों में भी न्यायालय की प्रक्रिया में भाग ले रही हैं।

यह मामला महिला कैदियों की सुरक्षा के मामले को भी सामने लाता है। हमारी जाँच से इस बात पर से पर्दा हटा कि छोटे थानों में बहुत ही कम महिला कांस्टेबल हैं। उदाहरण के लिए, आमला थाना जहाँ पर यह जुर्म हुआ, वहाँ कोई महिला कांस्टेबल नहीं थी। यह अपने आप में एक गम्भीर

मसला है। जिस थाने में कोई महिला कांस्टेबल ही नहीं हो उस थाने को किसी भी महिला को अपनी हिरासत में रखने का अधिकार नहीं है।

यह भी गम्भीर सरोकार का मुद्दा है कि महिला कैदियों के साथ व्यवहार की प्रक्रियाओं के उल्लंघन को खुली छूट और दण्डमुक्ति मिली हुई है। हिरासत में महिला सबसे अधिक जोखिमग्रस्त होती है और उसकी सुरक्षा के लिए गम्भीर और सशक्त प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। यदि उसके अधिकारों का उल्लंघन होता है तो उसे न्याय या उपचार ले पाने में सक्षम बनाने के लिए उचित व्यवस्था करने की भी आवश्यकता है।

महिला अपनी इच्छा से पुलिस स्टेशन में नहीं आती बल्कि कानून लागू करने वाली ताकतें उसे वहाँ लाती हैं। इसलिए महिला की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं की है। महिला कैदियों की परिस्थितियों और पुलिस या जेल प्राधिकारियों द्वारा उनके विरुद्ध किए जा सकने वाले अपराधों के खतरे की ओर खास ध्यान देने की आवश्यकता है। एक बंदी के आवाज़ उठाने की क्षमता बहुत ही कम होती है क्योंकि इन परिस्थितियों में वह वैसे ही डरी-सहमी होती है। केवल कुछेक ही इस तरह की घटना या जुर्म के बारे में बोल पाते हैं। एक वंचित तबके के नागरिक की गैर-कानूनी गतिविधि की तुलना में पुलिस बलों का कानूनहीन व्यवहार कहीं ज़्यादा गम्भीर अपराध है।

बदले के रूप में हिंसा: पारदियों को अपनी 'आपराधिक' पहचान का खामियाजा भुगतना पड़ा

“हम तुम्हारे साथ वही करेंगे जो तुम्हारे आदमियों ने उस महिला के साथ किया,” प्रभुत्व जाति के राजनैतिक नेताओं ने पारदी महिलाओं से कहा।

9 सितम्बर 2007 को मध्य प्रदेश के बैतूल जिले की मुलताई तहसील के गाँव चौथिया में बहुसंख्यक कुन्बी जाति की एक महिला की हत्या कर दी गई। इसका दोष पारदी समुदाय पर डाला गया जो गाँव के बाहरी इलाके में रहते थे। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि पारदी जनजाति को आपराधिक जनजाति अधिनियम 1871 के अन्तर्गत 'आपराधिक जनजाति' घोषित किया गया था। 1952 में अधिसूचित किए जाने के बाद भी, और अब आधिकारिक तौर पर एक खानाबदोश जनजाति कहे जाने के बावजूद लोगों का नज़रिया नहीं बदला है। पारदी लगातार लांछित किए जा रहे हैं और 'मुख्यधारा' के किनारों पर अलग-थलग जीवन जी रहे हैं।

अगले दिन शाम के समय पारदियों की बसाहट में आकर ज़िला प्रशासन ने घोषणा की कि चूँकि पारदियों के ऊपर किसानों द्वारा बदले में हिंसक कार्यवाही करने का खतरा था, इसलिए सभी पारदियों को तुरन्त अपने घर खाली कर देने चाहिए और भोपाल के लिए पलायन कर जाना

चाहिए। पहले उन्हें मुलताई थाने ले जाया गया। उसके बाद उनकी बस्ती वापस लाया गया जहाँ उन्हें मुश्किल से अपनी सम्पत्ति का सिर्फ एक छोटा हिस्सा ही लेने की अनुमति दी गई। फिर उन्हें पुलिस वैनों में भरा गया और भोपाल जाने वाली ट्रेनों में डाल दिया गया। पारदियों को कहा गया कि उन्हें अपनी सम्पत्ति के बारे में परेशान नहीं होना चाहिए और अपनी जान बचाने के लिए भोपाल चले जाना चाहिए, और कि प्रशासन उनकी सम्पत्ति एवं घरों का ख्याल रखेगी।

कोई विकल्प न रह जाने से, पूरे समुदाय को दबाव में भोपाल के लिए निकलना पड़ा। लेकिन जब दूसरों को वैनों में भरा जा रहा था, 10 महिलाओं को वहीं रुकने के लिए कहा गया क्योंकि वैन में जगह नहीं बची थी। इन महिलाओं को पारदियों के एक पक्के घर में रोककर रखा गया और उनके साथ राजनेताओं और पुलिस के उप-प्रभागीय अधिकारी (एस.डी.ओ.) ने सामूहिक बलात्कार किए। उन्होंने कहा “हम तुम्हारे साथ वही करेंगे जो तुम्हारे आदमियों ने उस महिला के

साथ किया"। उनका बलात्कार करने के बाद उन्हें एक जीप में भरकर रेलवे स्टेशन ले जाया गया और भोपाल जाने वाली ट्रेन में डाल दिया गया।

अगले दिन पास के जंगल में छिपकर रुक गए एक पारदी जोड़े की एक किसान के खेत में हत्या कर दी गई। महिला (दोदेलबाई) के साथ बलात्कार कर उसे कुएँ में फेंक दिया गया। इसके चश्मदीद गवाह थे उनके बेटे व बेटा, और तीन और आदमी जो उस समय जंगल में छुप गए थे जब उन्होंने पुलिस को बस्ती के पास आते हुए और दूसरों को वैनो में ले जाते हुए देखा था। पुलिस को देखकर जंगल में छुप जाना इन लोगों की एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है, जो अपने 'आपराधिक' लेबल और कानून के साथ लगातार लुका-छिपी की वजह से पुलिस के हाथों लगातार उत्पीड़न का सामना करते रहे हैं। सुबह जब इस समूह ने एक भीड़ को आते हुए देखा तो दोदेलबाई और उनके पति यह जानने के लिए कि क्या हो रहा था, सड़क पर आ गए। दोदेलबाई और बोन्दू, दोनों को भीड़ उठाकर ले गई। महिला का बलात्कार किया और आदमी की हत्या कर दी। चश्मदीदों ने कहा कि जब महिला को कुएँ में फेंका गया उस समय वह जीवित लग रही थी।

इसके बाद, लगभग 2000 लोगों की एक भीड़ ने चौथिया के पारदियों की पूरी बस्ती को जला दिया और पक्के घरों को ध्वस्त कर दिया। इस भीड़ को कांग्रेस के एक विधायक के साथ ही कांग्रेस पार्टी और भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के अन्य पदाधिकारी उकसा रहे थे। मीडिया ने पूरे प्रकरण को कवर किया और सभी नेताओं ने भी मीडिया के सामने अपने कृत्य का दावा किया। ज़िला न्यायाधीश और पुलिस अधीक्षक सहित प्रशासन के कई आला अधिकारी इस हिंसात्मक कार्यवाही के समय उपस्थित थे। यह सुबह 8

बजे शुरू होकर लगभग छह घंटे तक लगातार जारी रही। 24 घंटे की अवधि के भीतर, आगज़नी और लूटपाट हुई, 11 बलात्कार और दो हत्याएँ हुईं। यह सब पारदी समुदाय, जिन पर आपराधिक जनजाति का लेबल लगा हुआ है, के खिलाफ बदले की एक खुली कार्यवाही थी। यह उल्लेखनीय है कि कुन्बी महिला के साथ बलात्कार के मामले में, जिसने बदला लेने के लिए पारदियों के खिलाफ हिंसा की सामूहिक कार्यवाही को भड़काया, मुलताई का एक भी पारदी निवासी गिरफ्तार नहीं किया गया। बाद में इस मामले में अन्य चार आदमियों को गिरफ्तार किया गया जिनमें से कोई भी मुलताई का था ही नहीं।

इस बीच प्रभावित पारदी परिवार भोपाल में रुके रहे और उनकी शिकायतों के आधार पर सामाजिक कार्यकर्ताओं के हस्तक्षेप से राज्य मानवाधिकार आयोग और अधिसूचित जनजाति आयोग ने मामले को दर्ज किया। प्रभावित महिलाओं ने उनको बलात्कारों के बारे में सूचना दी। उन्होंने इसको अपनी रपट में दर्ज कर ज़िला प्रशासन को जाँच करने का आदेश दिया। ज़िला प्रशासन ने एक जाँच बिठाई जिसके तहत महिलाओं के बयानों को दर्ज किया गया और उनको चिकित्सीय जाँच के लिए भी भेजा गया। यह सब घटना को हुए एक महीने से भी अधिक समय बीत जाने के बाद हुआ था। कोई प्रथम सूचना रपट (एफ.आई.आर.) दर्ज नहीं की गई लेकिन पुलिस ने महिलाओं को जाँच जारी होने का आभास दिलाया।

सितम्बर 2010 में एक स्थानीय सामाजिक कार्यकर्ता, अनुराग मोदी द्वारा दाखिल की गई याचिका की सुनवाई करते हुए अदालत ने आदेश दिया कि जाँच केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सी.बी.आई.) को सौंप दी जाए। याचिकाकर्ताओं (अनुराग मोदी और प्रभावित लोगों) ने सी.बी.आई. को बलात्कारों के बारे में जानकारी दी और यह भी बताया कि

उन्हें औपचारिक रूप से कभी भी दर्ज नहीं किया गया था। तब उन्हें यह आश्वासन दिया गया कि एफ.आई.आर. दर्ज न होने पर भी सी.बी.आई. बलात्कार के मामलों की जाँच करेगी क्योंकि यह घटनाओं के क्रम का एक हिस्सा थे। सी.बी.आई. द्वारा की गई जाँच के दौरान बलात्कार पीड़ित महिलाओं के बयानों को दर्ज किया गया और उनको उचित कार्यवाही का आश्वासन दिया गया। महिलाओं के बयानों का वीडियो भी बनाया गया था।

लेकिन 2012 में, एक लम्बी देरी और पारदी समुदाय व सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा इस देरी के खिलाफ किए गए कई विरोध प्रदर्शनों के बाद जब सी.बी.आई. ने आखिरकार इस घटना पर अपनी चार्जशीट दाखिल की तो वे बलात्कार के मुद्दे में चुप ही रहे। उन्होंने बलात्कारों का या इस तथ्य का कि उन्होंने उनकी जाँच की थी और बयानों को दर्ज किया था, कोई जिक्र ही नहीं किया। सी.बी.आई. ने पहले महिलाओं के बयानों को दर्ज क्यों किया और बाद में उनको अनदेखा क्यों कर दिया? बयानों को दर्ज कर उन्होंने पीड़ितों के मन में यह गलत धारणा बनाई कि मामले दर्ज हो चुके हैं। लेकिन बयानों को पेश न करके और कोई भी आरोप दाखिल न करके उन्होंने महिलाओं को अब ऐसी स्थिति में छोड़ दिया है जहाँ घटना के पाँच साल बाद भी उनकी कोई औपचारिक एफ.आई.आर. तक दर्ज नहीं है। ऐसा लगता है जैसे सी.बी.आई. और पुलिस ने जानबूझकर मामले को धुँधला बना दिया है।

सबत मिटाना

दोदेलबाई की बलात्कार के बाद हत्या और बोनू की हत्या के मामले में मुलताई पुलिस थाना के प्रभारी और कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा बनाए गए

मृतकों के चोट पंचनामा और मुलताई अस्पताल के चिकित्सीय अधिकारी द्वारा बनाई गई पोस्टमॉर्टम रपट सहित सभी रिकॉर्डों के साथ छेड़छाड़ और हेराफेरी की गई है। जाति-आधारित अपराधों के मामले में यह अनोखा नहीं है, जहाँ प्रभुत्वशाली समुदाय राजनेताओं के साथ हिंसा में शामिल हों। सबसे पहले मौतों को 'आकस्मिक मौतों' के रूप में दिखाया गया और हत्या के मामले को गुप्त रखा गया। घटना के पूरे एक साल बाद भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अन्तर्गत हत्या की एफ.आई.आर. दर्ज की गई। सी.बी.आई. ने 2012 में अपनी रपट पेश की, लेकिन अदालत में अपने दो साल की जाँच के चुनिन्दा रिकॉर्डों को प्रस्तुत नहीं किया और पूरे रिकॉर्ड चार्जशीट के साथ दाखिल नहीं किए गए।

सी.बी.आई. द्वारा 31 अगस्त 2009 और अक्टूबर 2011 के बीच दर्ज किए गए चश्मदीदों के महत्वपूर्ण बयान, खासकर पीड़ित जोड़े की प्रत्यक्षदर्शी बेटी और अन्य तीन पारदियों के बयान, गायब हैं। आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि इन गवाहों ने अपने बयानों में मुलताई के कांग्रेस पार्टी के एक विधायक, बैतूल ज़िला पंचायत के उपाध्यक्ष व भाजपा के नेता और पुलिस के एस.डी.ओ. के नाम दोदेलबाई की बलात्कार के बाद हत्या व उनके पति की हत्या के मामले में मुख्य अपराधियों के रूप में लिखाया था। पारदी समुदाय के चश्मदीद गवाहों के बयानों को गायब कर देने के बाद, जाँच के तीसरे साल में सी.बी.आई. ने गवाहों के बयानों को दर्ज किया। ये गवाह दरअसल हिंसा के अपराधियों की बड़ी भीड़ का हिस्सा थे। कुछ गवाह स्थानीय अधिकारियों के साथ मिले हुए थे जिन्होंने पंचनामा के साथ छेड़छाड़ की थी। इन लोगों को मामले में साधारण गवाह बनाने की बजाय इनका नाम अभियुक्तों या हिंसा को बढ़ावा देने वालों में होना चाहिए था।

पारदी समुदाय के चश्मदीद गवाहों के बयानों में विरोधाभास पैदा करने के लिए सी.बी.आई. द्वारा इन गवाहों का इस्तेमाल किया जा रहा था ताकि तीन मुख्य आरोपियों के लिए एक बहाना तैयार किया जा सके। हत्या कर दिए गए जोड़े की पोस्टमॉर्टम रपट में घालमेल करने वाले चिकित्सा अधिकारी, मृतकों के तहकीकात पंचनामा में चोटों को दर्ज न करने वाले कार्यकारी मजिस्ट्रेट और पुलिस अधिकारियों पर भी मुकदमा चलाया जाना चाहिए। इसमें से कुछ भी नहीं किया गया। इसकी बजाय, ऐसा दिखता है कि विरोधाभासी मामले पैदा कर और भीड़ का हिस्सा रहे लोगों को चश्मदीद गवाह बनाकर वे जानबूझकर मामले को कमज़ोर कर रहे हैं।

आगज़नी और लूट जघन्य अपराध हैं और जहाँ प्रभुत्व समूह हाशिए के समुदायों (इस मामले में, परम्परागत रूप से एक लांछित समुदाय) पर हिंसा करता है वहाँ इन्हें जाति-आधारित अपराधों की तरह देखना चाहिए। बलात्कार का बदला लेने के लिए अन्य महिलाओं के साथ बलात्कार करना एक मिसाल है कि कैसे यौन हिंसा को दमन के एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया जाता है। तथ्य यह है कि सी.बी.आई. और पुलिस जाँच में बलात्कारों के मामलों को पूरी तरह से उपेक्षित किया गया है। इससे यह भी उजागर होता है कि इन्हें बाद में कैसे दबा दिया जाता है और बेहतर सामाजिक स्थिति वाले अपराधियों को दण्ड से मुक्ति मिल जाती है।



पारदियों को जिस जगह पर बसना पड़ा है वह सरकार की अनदेखी और तिरस्कार की कहानी बयाँ करती है।

जबकि महिलाएँ बहुत बहादुर थीं कि उन्होंने विभिन्न जाँच एजेंसियों से घटना के बारे में बहुत साहस के साथ बात की (और अपमानजनक पूछताछ से गुजरी), फिर भी उनके मामलों को किसी भी तार्किक निष्कर्ष पर नहीं लाया गया। सी.बी.आई. या पुलिस किसी अपराध की निर्णायक नहीं हो सकती। स्थापित कानून और प्रक्रियाओं के अनुसार उन्हें एफ.आई.आर. दर्ज करनी चाहिए और यह अदालत पर निर्भर है कि वह मामले के दमखम के आधार पर न्याय करे। तथ्य यह है कि दोनों ही जाँच एजेंसियों ने पहले महिलाओं के बयानों को दर्ज किया और फिर उन्हें दबा दिया। इससे यही पता लगता है कि वे अपराधियों को बचा रहे थे।

बहरहाल, जाँच में लम्बी देरी और पीड़ितों पर अपनी शिकायतें वापस लेने का लगातार दबाव इन महिलाओं को विचलित नहीं कर पाया है और वे अपने बयानों पर कायम हैं।

पीड़ितों ने सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर उच्च न्यायालय में सी.बी.आई. की चार्जशीट

और बलात्कार के मामलों को दबाए जाने के खिलाफ एक याचिका दायर की है। आगे एक लम्बी और कठिन लड़ाई है। यह समुदाय लगातार अपने अस्तित्व के लिए भी लड़ रहा है। घटना के पाँच साल बाद भी उनको अभी तक पुनर्वसित नहीं किया है और अब वे एक कूड़े के ढेर के ऊपर टपरो में रह रहे हैं और भीख माँगकर गुज़र-बसर कर रहे हैं।

यह समुदाय अपने इतिहास की एक विकृत समझ का बोझ ढो रही है। पूरे देश में पारदी समुदाय और अन्य अधिसूचित जनजातियों के खिलाफ हिंसा का एक इतिहास है। बैतूल ज़िले में ही पिछले एक दशक में बहुसंख्यक समुदाय द्वारा कानून को अपने हाथ में लेने की यह तीसरी घटना है। ऐसी घटनाएँ पड़ोसी राज्य महाराष्ट्र में भी दर्ज की गई हैं जहाँ पारदियों की काफी आबादी है। प्रशासन और कानून लागू करने वाली संस्थाओं की ऐसे राजनेताओं के साथ मिलीभगत, जो इन पूर्वाग्रहों का फायदा उठाते हैं, स्थिति को और बदतर बना देती है।

अन्याय का सामना: मीना खालको

एक सोलह वर्षीय लड़की को बलात्कार करने के बाद मार दिया गया। पुलिस ने अपने अपराध को छिपाने के लिए इसे 'नक्सली-मुठभेड़' का नाम दिया।

जुलाई 2011 में, छत्तीसगढ़ के बलरामपुर ज़िले के करचा गाँव में 5 और 6 जुलाई की रात हुई 'मुठभेड़' की खबर लगातार अखबारों में आती रही। इसमें मीना खालको नाम की एक नाबालिग आदिवासी लड़की को मार दिया गया था। पुलिस के कथन के अनुसार, नक्सलियों के साथ एक मुठभेड़ हुई थी और मारी जाने वाली मीना नक्सली समूह का हिस्सा थी। पुलिस ने दावा किया कि उन्हें उसके कब्जे से नक्सली साहित्य, हथियार और विस्फोटक मिला था। लेकिन मीना के गाँव के सरपंच और उसके परिवार समेत अन्य लोगों ने उसके नक्सली होने के दावे का खण्डन किया और वहाँ नक्सलियों के साथ हुई मुठभेड़ का भी।

7 जुलाई को मीना के पिता और उसके गाँव के अन्य लोगों ने बलरामपुर पुलिस अधीक्षक के कार्यालय में शिकायत दर्ज कराई। अपनी शिकायत में, मीना के पिता ने उसके नक्सली होने के दावे का खण्डन किया और यह भी दर्ज कराया कि घटना वाले दिन सुरक्षा बल और नक्सलियों के बीच कोई मुठभेड़ नहीं हुई थी। पोस्टमॉर्टम करने वाले डॉक्टर ने कहा कि लड़की के शरीर में बहुत पास से मारी गई बन्दूक की दो गोलियों के निशान थे और एक से अधिक व्यक्ति के द्वारा

सम्भोग किए जाने के संकेत थे। इस पर्दाफाश से मानव अधिकार कार्यकर्ताओं और मीडिया में खलबली मच गई। लोग जानना चाहते थे: मीना खालको कौन है? वह क्यों मारी गई? कौन झूठ बोल रहा है और क्यों?

राज्य की राजधानी रायपुर में पुलिस महानिदेशक ने न्यायिक जाँच के आदेश दिए और मुख्यमंत्री ने परिवारवालों को दो लाख रुपए का मुआवज़ा देने की घोषणा की। थाना के सभी कर्मचारियों को, जो उस दिन वहाँ तैनात थे, लाइन अटैच कर दिया गया – यानी दूसरी जगह और दूसरे पद पर भेज दिया गया। प्रदेश कांग्रेस समिति की एक टीम इलाके का दौरा करने गई और उन्होंने प्रेस को बयान दिया कि पुलिस का कथन संदिग्ध है और जो लड़की तथाकथित मुठभेड़ में मारी गई थी वह कभी भी नक्सली गतिविधियों में शामिल नहीं थी। समिति ने एक निष्पक्ष जाँच की माँग की।

संदर्भ

मीना के गाँव करचा तक पहुँचना बहुत आसान नहीं है, और बरसात के मौसम में पहुँचना और

भी दुर्गम हो जाता है। यहाँ जन यातायात के साधन उपलब्ध नहीं हैं और स्थानीय लोगों को रोज़ मीलों पैदल चलना पड़ता है। इस इलाके की अधिकांश आबादी आदिवासी है, जिसमें कि उरव सबसे प्रमुख जनजाति है। सोलह वर्षीय मीना खालको इसी समुदाय की थी। उसके माता-पिता किसान हैं, और उसका परिवार उनके खेतों से घिरे मिट्टी के एक छोटे से घर में रहता है। उसके दो भाई हैं, एक उससे बड़ा और एक छोटा। मीना कभी स्कूल नहीं गई इसलिए वह पढ़ना-लिखना नहीं जानती थी। लेकिन उसे अपने आसपास के बारे में बहुत जानकारी थी और वह खेती के काम में अपने परिवार की मदद भी करती थी। उसके काम की प्रमुख ज़िम्मेदारी थी मवेशियों को जंगल में चराना और उसका सबसे पसन्दीदा शगल था अपनी साइकिल चलाना। सम्भारी नामक एक बॉक्साइट खदान गाँव के पास ही स्थित है और इस खदान से भरे हुए ट्रक नियमित रूप से मीना के गाँव से गुज़रते हैं। मीना की एक ट्रक चालक के साथ दोस्ती हो गई थी और वे अक्सर उसके गाँव से तीन किलोमीटर दूर बहने वाली चेद्रा नाला नामक एक नदी के पास मिला करते थे।

घटनाक्रम

उस दिन, 5 जुलाई 2011 की शाम लगभग साढ़े चार बजे मीना खेत से घर आई और तैयार हुई। उसने अपनी साइकिल निकाली और परिवारवालों से कहा कि वह अपनी दोस्त से मिलने जा रही है और जल्द ही लौट आएगी। उसकी दोस्त गाँव

के दूसरी तरफ रहती थी। उस रात जब मीना वापस नहीं आई तो उसके परिवारवालों ने सोचा कि चूँकि काफी अँधेरा हो गया था और देर भी हो गई थी इसलिए वह वहीं रुक गई होगी और अगली सुबह वापस आ जाएगी। अगले दिन बहुत सुबह जब उसके पिता खेत में थे तभी गाँव से कोई दौड़ता हुआ उनके पास आया और बोला कि मीना के साथ कुछ हो गया है, “वह गम्भीर रूप से बीमार है, चन्दो अस्पताल चले जाओ।” मीना के माता-पिता तुरन्त ही अस्पताल के लिए निकल गए। लेकिन इसके पहले कि वे वहाँ पहुँच पाते पुलिस ने उन्हें पकड़कर थाने में बिठा लिया। कुछ समय बाद उन्हें पुलिस की गाड़ी में बलरामपुर अस्पताल ले जाया गया जहाँ उन्हें बताया गया कि मीना मर चुकी है। शाम तक पुलिस द्वारा उन्हें मीना का शव सौंप दिया गया और उसके अन्तिम संस्कार के लिए दस हज़ार रुपए दिए गए। उसी शाम मीना को दफना दिया गया।

चूँकि बलरामपुर ज़िला “नक्सल प्रभावित क्षेत्र” माना जाता है इसलिए यहाँ एक विशेष सुरक्षा बल तैनात किया गया है। यह विशेष सुरक्षा बल



स्रोत: <http://www.pratirodh.com/politics-and-society-news/>

करचा गाँव के पास चन्दो थाना में भी तैनात किया गया है। पुलिस और सुरक्षा बलों की टुकड़ियाँ नियमित तलाशी के लिए अक्सर आसपास के इलाकों में जाया करती हैं और अँधेरा होने के पहले ही वापस आ जाती हैं। उस समय पुलिस और सुरक्षा बलों के 25 जवान चन्दो में ड्यूटी पर थे। घटना वाले दिन थाने से एक टीम उसी इलाके में तलाशी के लिए गई हुई थी। सम्भव है कि अपनी वापसी के समय उन्होंने नदी के पास मीना को अपने पुरुष साथी के साथ देख लिया हो। उस शाम एक ट्रक नदी के दूसरी ओर खड़ा देखा गया था।

मीना 5 जुलाई की शाम और उसकी अगली सुबह के बीच कहाँ थी यह अभी तक अज्ञात है। सुबह तीन बजे के लगभग मीना के गाँववाले और पास के नवाडीह गाँव के लोगों ने बन्दूक से तीन गोलियों के चलने की आवाज़ सुनने के बारे में बताया। यह वह समय है जब गाँव की ज़िन्दगी शुरू होती है, लोग जंगल और खेत जाना शुरू करते हैं। लेकिन पुलिस ने इलाके को घेर लिया था और लोगों को बाहर नहीं आने दिया जा रहा था। पुलिस चिल्ला रही थी “जो भी आत्मसमर्पण करना चाहता है, अपने घर से बाहर आए।” जो ट्रक नदी के दूसरी ओर खड़ा था अब घटनास्थल पर खड़ा हुआ था और साइकिल उस पर पड़ी हुई थी। जब तक कि पुलिस मीना के शरीर को ले नहीं गई तब तक किसी को भी उस इलाके से गुज़रने की अनुमति नहीं दी गई।

सुबह साढ़े छह बजे के लगभग पुलिस उसके शरीर को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र ले गई। वहाँ के एक कम्पाउंडर ने लगभग 10 मिनट तक उसकी जाँच की। उस समय वह जीवित थी लेकिन बेहोश थी। कम्पाउंडर ने उसे बलरामपुर अस्पताल ले जाने की सिफारिश की क्योंकि

उसको बन्दूक की दो गोलियाँ लगी थीं जिन्हें ऑपरेशन करके निकालना पड़ता। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में इसकी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं। बलरामपुर अस्पताल में मीना की मौत हो गई। यदि पुलिस ने फुर्ती दिखाई होती और समय पर चिकित्सा सुविधा मिल गई होती तो शायद उसकी ज़िन्दगी बचाई जा सकती थी।

अनतिरित सवाल

- चिकित्सा सुविधा में देरी क्यों हुई?
- ट्रक और उसके चालक को क्या हुआ?
- मीना की साइकिल ट्रक से गायब क्यों हो गई जहाँ उसे अन्तिम बार देखा गया था?

घटनास्थल, जहाँ मीना मारी गई थी, के बहुत नज़दीक बसे एक घर को पुलिस व सुरक्षा बलों द्वारा बाहर से बन्द कर दिया गया था। जल्द ही इस परिवार पर यह बयान देने के लिए दबाव डाला गया कि वहाँ मुठभेड़ हुई थी और उन्होंने कई राउण्ड गोलियों की आवाज़ें सुनी थीं। जब इस परिवार ने कलेक्टर से मिलकर पुलिस के दबाव के बारे में शिकायत की तभी पुलिस का उनके घर आना बन्द हुआ। उस इलाके के लोग इतने डरे हुए हैं कि उन्होंने बाहर के लोगों से बात करना ही बन्द कर दिया। यहाँ तक कि वहाँ का सरपंच भी दबाव में है।

फरवरी 2012 में, घटना के छह महीने बाद राज्य आपराधिक जाँच विभाग (सी.आई.डी.), जो कि जाँच सम्हाल रही थी, ने उन सभी 25 सुरक्षाकर्मियों की डी.एन.ए. जाँच के आदेश दिए जो कि मीना को मारे जाने वाले दिन ड्यूटी पर थे। मीना के ऊतक का भी एक नमूना सागर की सरकारी फोरेंसिक प्रयोगशाला में भेजा गया था लेकिन कोई परीक्षण नहीं किया गया क्योंकि भेजे गए नमूने की मात्रा अपर्याप्त थी। फिर भी पुलिस ने

घोषणा की कि सागर की प्रयोगशाला ने सभी पुलिसवालों को क्लीन चिट दे दी है।

पलिस का कथन

पुलिस ने अपनी तरफ से मुठभेड़ की रपट पूरी कर ली थी। एफ.आई.आर. के अनुसार उस रात एक मुठभेड़ हुई थी और उसमें एक नक्सली लड़की मीना खालको मारी गई थी। खबरों के अनुसार सरकार ने उसके परिवारवालों को दो लाख रुपए का मुआवज़ा और उसके भाई को एक स्कूल में नौकरी दी थी। हालाँकि सवाल अभी भी अनुत्तरित बना हुआ है: यदि मीना एक नक्सली थी तो किस योजना के तहत उसके परिवारवालों को यह मुआवज़ा दिया गया?

बलात्कार के मामले में चप्पी

बहरहाल, मीना खालको के साथ हुए सामूहिक बलात्कार और उसे मारे जाने के बारे में कोई एफ.आई.आर. दर्ज नहीं की गई है, जबकि उसके परिवारवालों ने पुलिस में शिकायत भी दर्ज कराई थी। न्याय का उपहास करते हुए उस समय के थाना प्रभारी को प्रमोशन मिल गया और अन्य पुलिसवालों व सुरक्षाकर्मियों को अन्य जगहों पर तैनात कर दिया गया है।

इस मामले को न केवल राज्य स्तर की मीडिया

में बल्कि राष्ट्र स्तर की मीडिया में भी प्रमुखता दी गई थी।

चूँकि प्रदेश काँग्रेस समिति ने इस मामले को विधान सभा के प्रश्नकाल के दौरान उठाया था, यह एक राजनैतिक मुद्दा बन गया। इससे सरकार पर एक दबाव बना और उसके प्रशासन को कार्यवाही करनी पड़ी। जून 2012 में न्यायिक जाँच के आदेश दिए जाने के बाद प्रारम्भिक मजिस्ट्रेट की जाँच को बन्द कर दिया गया। छह महीने बाद भी जाँच अभी तक पूरी नहीं हुई है।

जून 2012 में अम्बिकापुर में न्यायिक जाँच कार्यालय स्थापित किया गया। शुरुआत में घोषणाएँ की गईं कि किसी को भी घटना के बारे में कुछ भी पता हो तो आगे आकर अपना बयान दर्ज कराए। जाँच की समय-सीमा तीन महीने की थी। बाद में इसे तीन महीने के लिए और बढ़ा दिया गया, जो कि नवम्बर 2012 में खत्म हो गई।

गौरतलब है कि न्यायिक जाँच प्रभारी न्यायाधीश अनीता झा ने अभी तक एक बार भी इलाके का दौरा नहीं किया है। जब मीना के परिवारवाले अम्बिकापुर में मीना खालको न्यायिक जाँच कार्यालय गए तो उन्हें वहाँ कोई भी नहीं मिला। मीना के परिवारवालों ने हर सम्भव मंच पर अपने बयान दर्ज कराए हैं। अब उसके परिवारवालों को न्याय की बहुत कम उम्मीद रह गई है।

न्याय को भ्रष्ट करते राजनैतिक स्वार्थ: शोपियाँ में सामूहिक बलात्कार और हत्या

“मामला केवल इतना नहीं है कि दो महिलाओं को दफनाया, खोदकर निकाला और फिर से दफनाया गया। स्वयं न्याय ही राज्य की सभी दूर फैली कब्रों में अच्छी तरह से दफन हो गया है – शोपियाँ में तो निश्चित ही” आई.डब्ल्यू.आई.जे. की 2009 की रपट में

29 मई 2009 को दो युवा महिलाएँ, नीलोफर उम्र 22 साल और आसिया उम्र 17 साल, शाम साढ़े चार के आसपास घर से अपने बगीचे के लिए निकलीं। दोनों में ननद-भाभी का रिश्ता था – नीलोफर की शादी आसिया के भाई शकील अहमद से हुई थी और उसका एक नवजात बेटा भी था। आसिया ग्रीनलैंड पब्लिक स्कूल की ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ने वाली किशोरी थी। वह इंजीनियर बनना चाहती थी।

जब वे देर शाम तक नहीं लौटीं तब शकील ने अपने मित्रों और परिवारों की मदद से बगीचे में, आसपास के इलाके और शहर की उन गलियों में जो उनके घर की ओर आती हैं, उनको ढूँढना शुरू किया। रात के साढ़े दस बजे के बाद शकील ने पुलिस से मदद माँगी और फिर उनके साथ में सर्चलाइटों और हाथवाली फ्लैशलाइटों की मदद से बगीचे से लेकर शोपियाँ शहर तक उनको तलाशा। उन्होंने पुल के पास वाले नाले में भी उनको खोजा।

खोजबीन में पुलिस और सी.आर.पी.एफ. के शिविरों

के बीच का इलाका, पुलिस आवासीय इमारतें और राष्ट्रीय राइफल्स (जिसे कि 'रेड ज़ोन' (उच्च सुरक्षा क्षेत्र) माना जाता है) वाला इलाका शामिल था। शाम ढलने के बाद नागरिकों को उसके आसपास के इलाके में कदम रखने की अनुमति नहीं है। सर्चलाइटें जला दी जाती हैं और वहाँ रात भर पहरा दिया जाता है।

रात ढाई बजे के लगभग पुलिस ने इस वादे के साथ खोजबीन बन्द कर दी कि सुबह होते ही तलाश फिर से शुरू कर देंगे। सुबह साढ़े पाँच के आसपास शकील की खोज शुरू हुई। एक घंटे के बाद स्थानीय पुलिस भी शामिल हो गई और लगभग तुरन्त ही एस.एच.ओ. शफीक अहमद ने नाले के ऊपर बने ज़ावोरा पुल से लगभग 100 मीटर दूर प्रवाह की विपरीत दिशा में एक उथली जगह में पड़े नीलोफर के शरीर की ओर इशारा किया। ठीक इसी जगह पर पिछली रात लगभग ढाई बजे तक पुलिस और परिवारवालों द्वारा अच्छी तरह से खोजबीन की गई थी। इससे थोड़ा आगे धारा की दिशा में सेना के शिविर से

डेढ़ किलोमीटर दूर एक ऊँची सूखी जगह पर आसिया का शरीर पाया गया।

जिन लोगों ने दोनों महिलाओं के शरीर का पता लगाने में मदद की उन्हें हालातों से यह सन्देह हुआ कि यह बलात्कार और हत्या का मामला था। नाले से बरामद किए गए शरीरों की फोटो में चोटों के निशान स्पष्ट दिख रहे थे। प्रत्यक्षदर्शियों ने गवाही दी कि नीलोफर का शरीर औंधे-मुँह था, सिर नाले के एक पत्थर पर टिका हुआ था। उसकी आँखें खुली और हाथ फैले हुए थे। उसके द्वारा पहना हुआ फिरन (एक प्रकार का कपड़ा) उठा हुआ था जिस कारण से उसके शरीर का ऊपरी हिस्सा खुला हुआ था और उसके कपड़े फटे हुए थे। उसकी गर्दन, भुजाओं और कूल्हों पर खरोंच के निशान थे। उसके चेहरे, छाती, गर्दन और कलाइयों पर घसीटने के निशान भी थे। उसका दुपट्टा, जो उस दिन उसने पहना हुआ था, उसके सिर पर नहीं था। नीलोफर जाँ के सोने के गहने शरीर पर ही थे जो इंगित करते हैं कि उन्हें लुटेरों ने नहीं पकड़ा था। आसिया के माथे पर फ्रेक्चर था जहाँ सम्भवतः उस पर वार किया गया होगा। उसका शरीर भी औंधे-मुँह था। उसके कपड़े फटे हुए थे और उन पर खून के धब्बे थे। जिनको आसिया का शरीर मिला उन्होंने बताया कि उसके कपड़े सूखे थे और मुँह झाग से घिरा हुआ था।

नीलोफर जाँ का शरीर पुलिस शिविर और बगीचे के बीच नाले पर पाया गया था, ठीक उसी जगह जहाँ 29-30 मई की रात ढाई बजे तक खोजी दल सक्रिय रहा था। सुरक्षा बलों की नज़र में आए बिना शवों को वहाँ तक ले जाया जा सके, यह सम्भव ही नहीं था। शवों को रम्बी-आरा नाला में रखने के लिए या तो भारी वाहन की या घोड़े जैसे किसी जानवर की ज़रूरत पड़ती या फिर हरेक शव को उठाने के लिए दो या अधिक

लोग लगते क्योंकि नाले की ज़मीन पथरीली थी।

29-30 मई की रात की घटना के बारे में, स्थानीय समुदाय के लोगों का अनुमान था कि नीलोफर और आसिया के शवों को रात के ढाई बजे के लगभग खोजी दल के खोजबीन बन्द करने और अगली सुबह साढ़े छह बजे एस.एच.ओ. के आने के बीच के समय में कभी रखा गया होगा।

राजनीति और जनता के दबाव के बीच घटिया जाँच

जहाँ से शव मिले थे वहाँ से कोई भी सबूत इकट्ठा नहीं किए गए। उसके बाद शवों को शोपियाँ ज़िला अस्पताल ले जाया गया जहाँ तीन डॉक्टरों ने उनका पोस्टमॉर्टम किया और कहा कि दोनों की मृत्यु डूबने के कारण हुई थी। पुलिस अधीक्षक, जो कि उस समय अस्पताल में मौजूद थे, पोस्टमॉर्टम वाले कमरे में गए और उसके बाद अस्पताल छोड़कर चले गए। अस्पताल द्वारा दिए गए बयान से वहाँ इकट्ठी भीड़ में विरोध की लहर पैदा हो गई।

दो पोस्टमॉर्टमों के बावजूद तथ्य अपुष्ट बने रहे। उसके बाद लोग आसिया और नीलोफर के शवों के साथ जुलूस के रूप में अस्पताल से शोपियाँ के ज़िला कलेक्टर कार्यालय तक गए। लोगों की माँग पर कलेक्टर ने ज़िला अस्पताल शोपियाँ में दूसरा पोस्टमॉर्टम करने के लिए नज़दीक के ज़िले पुलवामा के चिकित्सकों की एक टीम गठित की। डॉक्टर निगहत शाहीन, एक स्त्रीरोग विशेषज्ञ, इस टीम का हिस्सा थीं। डॉक्टर शाहीन को एक विशेषज्ञ की हैसियत से यौन उत्पीड़न का निर्धारण करने के लिए स्त्रीरोग परीक्षण करने को कहा गया। उनको शव परीक्षण करने के लिए नहीं कहा गया। डॉक्टर ने पुलिस अधीक्षक और अन्य सुरक्षा कर्मियों की उपस्थिति में बयान

दिया। बताया जाता है कि डॉक्टर शाहीन ने रुआँसे होकर घोषणा की: 'ये जानवरों का काम है, सामूहिक बलात्कार हुआ है।'

उसके बाद शवों को परम्परा अनुसार दफनाने के लिए शकील अहमद के घर ले जाया गया। शवों को दफन के लिए तैयार करने वाली महिलाओं ने इस बात की पुष्टि की कि उन पर बने चोटों के निशान यौन हिंसा का प्रमाण दे रहे थे।

हिंसा व हत्या की सूचना और लोगों के क्रोधित विरोध के बावजूद, पुलिस ने एफ.आई.आर. दर्ज नहीं की। मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला ने बिना किसी आधार के एक कदम बढ़कर बलात्कार की घटना से इन्कार कर दिया और घोषणा की कि मौत डूबने से हुई थी। ये अजीब था कि दो जवान महिलाएँ उस नाले में डूब गईं जहाँ किसी के भी, यहाँ तक कि किसी बच्चे के भी डूबने का कोई इतिहास नहीं था।

लोगों के दबाव में मुख्यमंत्री ने अपना रुख बदला और छानबीन व जाँच के लिए उन्होंने 31 मई 2009 को एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश, मुज़फ्फर जान को नियुक्त किया। इसके लिए उन्हें एक महीने का समय दिया गया।

श्रीनगर की फॉरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला (एफ.एस.एल.) की पहली रपट को आने में पाँच दिन लग गए। इसके बाद एफ.एस.एल. के कर्मियों ने टिप्पणी की कि वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के दबाव के कारण उन्हें रपट जारी करने में देरी करनी पड़ी। इस रपट में बलात्कार की पुष्टि की गई जबकि मौत के कारण के सम्बन्ध में यह रपट 'अधूरी' है।

5 जून 2009 को जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन ने शोपियाँ घटना के बारे में प्राथमिक सूचना रपट (एफ.आई.आर.) के पंजीकरण की माँग करते हुए एक जनहित याचिका दायर

की। अपराध की धाराओं में अपहरण, बलात्कार और हत्या शामिल थे। उच्च न्यायालय ने याचिका स्वीकार कर मामले पर नज़र रखना शुरू कर दिया।

7 जून को शोपियाँ पुलिस थाने में रनबीर दण्ड संहिता की धारा 376 (बलात्कार) के अन्तर्गत एक एफ.आई.आर. दर्ज की गई। पुलिस ने आसिया जाँ और नीलोफर जाँ के बलात्कार व हत्या के मामले में आठ दिन बाद भी एफ.आई.आर. दर्ज नहीं की थी परन्तु आम लोगों के खिलाफ पथराव की घटना के तुरन्त बाद ही एफ.आई.आर. दर्ज कर ली गई।

8 जून 2009 को पुलिस महानिदेशक द्वारा एक विशेष जाँच टीम (एस.आई.टी.) गठित की गई।

10 जून 2009 को पुलिस ने आसिया जाँ और नीलोफर जाँ की हत्या सम्बन्धी एफ.आई.आर. में रनबीर दण्ड संहिता की धारा 302 के तहत अनिर्धारित हत्यारों द्वारा हत्या के आरोप भी जोड़ दिए।

12 जून 2009 को एफ.एस.एल. की दूसरी रपट ने कई शुक्राणुओं की उपस्थिति की पुष्टि की जिससे आसिया जाँ और नीलोफर जाँ के साथ हुए सामूहिक बलात्कार की बात साबित हुई। चिकित्सकों ने, जिन्होंने शवों का पोस्टमॉर्टम किया था, जस्टिस जान आयोग के समक्ष गवाही दी कि कथित तौर पर 'सामूहिक बलात्कार' प्रमाणित हुआ है और कहा कि मौत डूबने या आत्महत्या करने की वजह से नहीं हुई थी।

इसके बाद जो हुआ वह यह दिखाता है कि किस तरह हर स्तर पर अपराधियों को बेनकाब करने की ज़िम्मेदारी वाले लोगों ने व्यवस्थित तरीके से जानबूझकर सबूतों के साथ छेड़छाड़ की, उन्हें नष्ट कर दिया या कमज़ोर बना दिया। और इस तरह ध्यान भटकाने और यौन हिंसा के इन



फोटो: <http://www.tribuneindia.com/2009/20090626/jk2.jpg>

जघन्य कृत्यों के अपराधियों को बचाने के उद्देश्य से जाँच प्रक्रिया को गुमराह करके उलझा दिया। बहरहाल, जनता का आक्रोश गहरा था। बलात्कार और हत्या के मामले को दबाने के प्रयास के विरोध में शोपियाँ शहर 48 दिनों तक बन्द रहा। दो मृत महिलाओं के लिए न्याय की माँग करते हुए अधिकाधिक संख्या में स्कूली विद्यार्थियों, विशेषकर छात्राओं ने जून और जुलाई के महीने में शोपियाँ में हुए प्रदर्शनों में भाग लिया। जम्मू के लोग भी इसमें शामिल हुए।

बहत सारे खानसामे या बहत सारे चोर

जस्टिस जान आयोग के तहत हो रही जाँच के अलावा एस.आई.टी. और उच्च न्यायालय भी मामले को देख रहे थे।

जान आयोग की जाँच से निम्नलिखित बातें उभरकर आईं:

1. आसिया जाँ और नीलोफर जाँ के शवों को रम्बी-आरा नाले में दो जगहों पर 30 मई 2009 की रात के ढाई और अगली सुबह छह बजे के बीच रखा गया;
2. कि शवों को वहाँ पहुँचाने के लिए आम नागरिकों

की रेड ज़ोन में प्रवेश करने की सम्भावना नहीं हो सकती/लगती;

3. कि दो गवाहों ने बताया कि उन्होंने 29 मई 2009 की रात को 8 बजे के आसपास रम्बी-आरा नाले के पुल पर पुलिस की गाड़ी (टाटा 407) और पुलिसकर्मियों को देखा था;
4. कि सुरक्षाकर्मियों ने सबूतों को दबा दिया और नष्ट कर दिया, और इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे सबूतों को दबाने और नष्ट करने के अपराधी हैं;
5. कि पुलिसकर्मियों द्वारा की गई गलतियों की संख्या यह धारणा बनाने की अनुमति देती है कि गलतियों को जानबूझकर पुलिस मैनुअल और संज्ञेय अपराधों के बारे में उपयोग किए जा रहे नियमों की अवज्ञा के इरादे के साथ किया गया।

12 जुलाई को सेवानिवृत्त न्यायाधीश मुज़फ़्फ़र जान ने रपट के संलग्नक में डाले गए बयान से खुद को अलग कर लिया, जिसमें दोनों महिलाओं का चरित्र हनन किया गया था और परिवार के खिलाफ अन्य आरोप लगाए गए थे। सेवानिवृत्त न्यायाधीश मुज़फ़्फ़र जान द्वारा छेड़छाड़ की स्वीकारोक्ति के बाद जाँच को प्रभावित करने के उद्देश्य से उसमें सरकारी संस्थानों और सुरक्षा बलों की भागीदारी पर गम्भीर सवाल उठे। यह भी सवाल उठाए गए कि मामले की 'सच्चाई' क्या थी, इसकी जानकारी किसे थी और क्या छिपाया जा रहा था। सेवानिवृत्त न्यायाधीश मुज़फ़्फ़र जान ने यह दावा भी किया कि रपट के उनके संस्करण में उन्होंने आसिया जाँ और नीलोफर जाँ के चरित्र और परिवार के खिलाफ कोई आरोप नहीं लगाए थे। ऐसा लगता है कि रपट में दर्ज किए गए इस तरह के आरोपों और संलग्नक में दिए गए अन्य आरोपों को यदि जस्टिस जान

द्वारा नहीं डाला गया, तो हो सकता है कि बहुत वरिष्ठ सुरक्षा अधिकारी या किन्हीं राज्य स्तरीय अधिकारियों के आदेश से ऐसा किया गया हो।

उच्च न्यायालय में मुकदमा सुचारू रूप से चल रहा था और वह एक सन्तुलित रास्ता ले रहा था। न्यायालय ने मामले की जाँच करने वाले चार पुलिस अधिकारियों को गिरफ्तार करने के आदेश दिए थे, उनमें से किसी पर भी बलात्कार और हत्या के आरोप नहीं थे लेकिन जाँच को प्रभावित करने के आरोप थे। न्यायालय ने पुलिस अधिकारियों को ज़मानत देने से इन्कार कर दिया था और दो अलग बिन्दुओं पर यह टिप्पणी की थी कि किसी को बचाने के प्रयास किए जा रहे थे। जुलाई में उच्च न्यायालय ने शवों को खोदकर निकालने के आदेश दिए।

एस.आई.टी. जाँच बहुत अधिक प्रगति नहीं कर रही थी। अन्ततः अगस्त में राज्य सरकार ने मामले की जाँच करने में अपनी अयोग्यता को लगभग स्वीकार करते हुए उसे सी.बी.आई. को सौंप दिया क्योंकि उनकी पुलिस अपना काम नहीं जानती थी (बीस से भी अधिक सालों से वे केवल नागरिकों और 3000 विद्रोहियों से लड़ रहे थे)। पीड़ितों के परिवारवालों और स्थानीय मजलिस ने सी.बी.आई. का स्वागत किया। जाँच में सहयोग करने के लिए वे पूरी तरह से तैयार थे।

इसी समय, केन्द्रीय सरकार भी मैदान में कूद पड़ी और संसद में दिए गए अपने वक्तव्य में पी. चिदम्बरम ने सुरक्षा बलों को उन आरोपों से बरी कर दिया जिनकी जाँच अभी चल ही रही थी। अतः यह स्पष्ट था कि सी.बी.आई. किस निष्कर्ष पर पहुँचने वाली थी क्योंकि यह अकारण नहीं है कि गृह मंत्रालय के अधीन इस ब्यूरो को “उनके मालिक की आवाज़” कहा जाता है।

सी.बी.आई.. पुलिस. सी.आर.पी.एफ. और राष्ट्रीय राइफल्स -- सब भाई-भाई

जब सी.बी.आई. ने मामले का ज़िम्मा लिया तो उसने निलम्बित पुलिस अधिकारियों की भूमिकाओं पर सवाल तक नहीं उठाए। सी.बी.आई. की जाँच पीड़ितों के शवों के पीछे पड़ गई और जो निष्कर्ष उन्होंने निकाले वे पुराने निष्कर्षों से एकदम भिन्न थे। हालाँकि अदालत ने सी.बी.आई. को प्रेस से विशेष रूप से दूर रहने के लिए कहा था, फिर भी इनके ‘निष्कर्ष’ बार-बार सुनियोजित तरीके से प्रेस में लीक किए गए।

सी.बी.आई. के अनुसार, डॉक्टर और गवाह झूठे थे और वे बागियों का प्रतिनिधित्व करने वाले मजलिस व शोपियाँ बार एसोसिएशन के दबाव में काम कर रहे थे। डॉक्टर से यह कबूल करवाया गया कि वह जाँच के लिए योनि के नमूने और दस्ताने ले गई थी जिन्हें (तीन महीने बाद) प्रसूतिशास्त्र विभाग से ज़ब्त किया गया। मदद के लिए महिलाओं की आवाज़ें सुनने वाले गवाहों को भी झूठा ठहराया गया और उन्हें अपनी गवाही वापस लेने को मजबूर किया गया। लेकिन सी.बी.आई. जाँच का मुख्य मुद्दा था चार महीने पहले दफन शरीर में योनिद्वार की झिल्ली का बरकरार होना। इसका मतलब यह था कि आसिया जाँ अभी भी कुँवारी थी और उसका सम्मान बचा हुआ था; और उससे भी अधिक यह कि अब उनके सुलझाने के लिए एक अपराध कम हो गया था। वैसे भी चिकित्सा न्यायशास्त्र में बलात्कार को स्थापित करने के लिए योनिद्वार की झिल्ली का टूटना आवश्यक शर्त नहीं है। तीसरा पोस्टमॉर्टम कर रही टीम को शव में मिली योनिद्वार की झिल्ली बेहद मज़बूत रही होगी, जो गर्मी के महीनों में दफन सड़ते हुए, कीड़े पड़े हुए इस शव में भी बरकरार रह पाई।

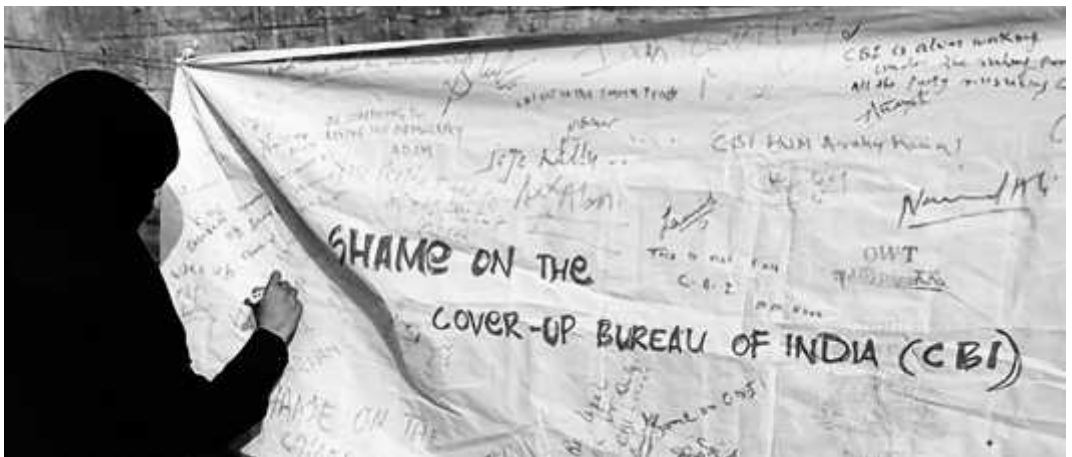
उसके बाद दोनों शवों के फेफड़े बरकरार पाए

गए जिन पर पहले प्रवर्तन परीक्षण नहीं किए जा सके थे और इसके लिए डॉक्टरों को दोषी ठहराया गया कि उन्होंने प्रवर्तन परीक्षण के लिए फेफड़ों की बजाय हृदय का इस्तेमाल किया। अन्तिम परीक्षण ने सन्देह से परे यह साबित कर दिया कि वास्तव में मौत डूबने की वजह से हुई थी। शव दूसरी ही कहानी बयाँ कर रहे थे – यदि यह आकस्मिक डूब थी तो पीड़ित अपने हाथ से कुछ पकड़ने की कोशिश करते लेकिन सी.बी.आई. के ढूँढ निकालने के लिए वहाँ कुछ नहीं था।

बहरहाल, सी.बी.आई. यह जवाब देने में असफल रही कि पुलिस और अहमद परिवार के रिश्तेदारों द्वारा रात के ढाई बजे उनकी खोजबीन बन्द करने के बाद और सुबह साढ़े छह बजे पुनः शुरू करने के बीच के समय में ही शव उस जगह पर कैसे पहुँचे। और गाँधी के बन्दरों की तरह बड़ी-बड़ी सर्चलाइटों से जगमग उस क्षेत्र में किसी ने भी न तो कुछ देखा और न ही कुछ सुना। आसिया के माथे की चोट का कोई स्पष्टीकरण नहीं था। इस बात का भी तर्कपूर्ण जवाब नहीं मिला कि आसिया की बरकरार योनिद्वार की झिल्ली से यह निष्कर्ष कैसे निकाला गया कि नीलोफर का भी बलातकार नहीं हुआ था।

हमें यह याद रखना चाहिए कि पहले दो पोस्टमॉर्टम शवों के पाए जाने के बाद तुरन्त ही किए गए थे जबकि तीसरा पोस्टमॉर्टम शवों के विघटित होने के बाद हुआ, इसलिए इसके नतीजे उतने सही नहीं हो सकते। अदालत ने तीसरा पोस्टमॉर्टम श्रीनगर के मेडिकल कॉलेज के प्राचार्य की देखरेख में करने के लिए कहा था। इस आदेश को नज़रअन्दाज़ कर दिया गया। पहले के निष्कर्षों की पुष्टि या खण्डन करने के लिए, तीसरे पोस्टमॉर्टम के समय पहले दो के डॉक्टर अवश्य शामिल होने चाहिए थे, लेकिन ऐसा भी नहीं हुआ। वास्तव में, पहले दो पोस्टमॉर्टम अधिक तटस्थ वातावरण में किए गए जहाँ लोगों का आक्रोश उभरकर नहीं आया था। लेकिन तीसरा पोस्टमॉर्टम तब किया गया जब पुलिस अधिकारियों को निलम्बित किया जा चुका था और हवा सुरक्षा बलों के खिलाफ थी।

खैर, अब सी.बी.आई. ने इस मामले को बन्द कर दिया है, और डॉक्टरों से इकबालिया बयान ले लिया है, और सभी परिपाटी के खिलाफ गवाहों के बयान दोबारा दर्ज किए हैं। इस सबके बाद उसने इन मौतों को 'प्राकृतिक' घोषित कर दिया है। गवाह और डॉक्टर, उन सभी के समक्ष जो



फोटो: <http://twocircles.net/2010dec08/>

shopian_case_donateshroudtoctbi_campaign_launched_women_groups.html

सुनने की परवाह करते हैं, इन बयानों से इन्कार कर रहे हैं।

लेकिन यदि हम सी.बी.आई. की बात मानें तो पूरा शोपियाँ शहर विद्रोहियों से भरा हुआ है और वे अदालतों में वकालत करने वाले वकील अलगाव पैदा करने वाले शरारती तत्व हैं, और इसीलिए सशस्त्र सेना और पुलिस निर्दोष है। यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि इन सबके बीच आसिया के 'प्रेम-प्रसंगों' और फल उद्यान जाने के कारणों के बारे में कई सारी अफवाहें गूँजती हैं। और माहौल को और गन्दला करने और बात को मुद्दे से भटकाने के लिए शकील के पास अपने आय के स्रोतों से अधिक पैसा होने के आरोप भी उछाले जाते हैं।

दिल्ली विरोध प्रदर्शन

दिल्ली में पहला विरोध प्रदर्शन 19 जून 2009 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस सैंटेनरी समिति द्वारा किया गया। इसके बाद पाँच महिलाओं ने उस इलाके का विज़िट कर तथ्य जाँच की। सी.बी.आई. रपट की इस घोषणा के बाद कि ये मौतें 'प्राकृतिक' हैं, 13 दिसम्बर 2009 को एक प्रेस वार्ता की गई। जब सी.बी.आई. पुलिस अधिकारियों को बरी करना चाह रही थी, तब भी इसके खिलाफ बयान जारी किए गए। सर्वोच्च न्यायालय, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग और राष्ट्रीय महिला आयोग को एक खुला पत्र भेजा गया जिसमें सी.बी.आई. की जाँच और निष्कर्षों की खामियों को उठाया गया। इस पर देश भर के 40 से अधिक संगठनों और 70 से अधिक व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किए। निलम्बित पुलिसकर्मियों को सी.बी.आई. की अनुशंसा पर बहाल कर दिया गया। बावजूद इसके कि मामला अभी जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय में चल ही रहा था, जिसने सी.बी.आई. की रपट को पूर्ण सत्य मानने से इन्कार कर

दिया था। यह बहाली वर्दीधारियों को मिली दण्डमुक्ति पर भी प्रकाश डालती है और राज्य व केन्द्र प्रशासन के रूप में काम कर रही राजनीतिक ताकतों से उन्हें मिले संरक्षण की ओर भी। घटनाक्रम की निष्पक्ष जाँच सुनिश्चित करने की बजाय सरकार ने सी.बी.आई. सहित अन्य सुरक्षा एजेंसियों को यह छूट दी है कि वे आवाज़ उठाने वालों को दबा दें। न्यायाधीश बारिन घोष द्वारा सी.बी.आई. के पक्ष, कि पुलिस निर्दोष है, को स्वीकार करने से इन्कार करने पर उनका तबादला भी सरकार की पोल खोलता है। उच्च न्यायालय के माध्यम से अहमद परिवार का संघर्ष लगातार जारी है।

किसी के भी संज्ञान नहीं लेने पर, अन्ततः 13 दिसम्बर 2010 को पूरे देश से महिला संगठनों ने सी.बी.आई. को चादरें भेंट कीं जो इस मामले में मुद्दों को ढँकने की उनकी कोशिश को रेखांकित करती थी।

हम उसी पर कायम हैं जो हमने तीन साल पहले कहा था

जम्मू और कश्मीर के हालात किसी भी अन्तर्मन वाले इन्सान को गवारा नहीं हैं। लोकतंत्र का मूलतत्व यही है कि कानून और न्याय सभी के लिए है। परन्तु व्यापक सैन्यीकरण और सशस्त्र बल विशेष अधिकार अधिनियम (आफ़सपा) कश्मीर घाटी में सुरक्षाकर्मियों को बलात्कार, हत्या, गुमशुदगी और झूठी मुठभेड़ के बेहिसाब मामलों में दण्ड से मुक्ति प्रदान करता है। जम्मू-कश्मीर की अस्वीकार्य स्थिति चन्द तबादलों, कुछेक कैम्प हटाने या कुछ लोगों को बर्खास्त करने से खत्म नहीं होगी। इशारा साफ है: लोगों के आम जीवन को बहाल करने के लिए आफ़सपा को रद्द करना होगा। वर्ना शोपियाँ का मामला आखिरी नहीं होगा।

खैरलांजी: उच्च जाति का प्रभुत्व बरकरार है

भोटमंगे परिवार का सिर्फ एक 'जुर्म' था कि उन्होंने खुद को उस अमानवीय जीवन से ऊपर उठाने का प्रयत्न किया जिसमें अधिकांश दलित अभिशप्त हैं। नतीजा था: बलात्कार, शोषण व हत्या।

महाराष्ट्र के भण्डारा ज़िले के खैरलांजी गाँव में 29 सितम्बर 2006 को एक दलित परिवार के चार सदस्यों पर बेरहमी से हमला कर उनका कत्ल कर दिया गया। ये चार सदस्य थे – माँ, सुरेखा भोटमंगे, उम्र 45 वर्ष; दो बेटे सुधीर भैयालाल भोटमंगे, 21 वर्ष व रोशन भैयालाल भोटमंगे, 19 वर्ष और बेटा प्रियंका भैयालाल भोटमंगे, 19 वर्ष। उन्हें उनकी झोंपड़ी से घसीटकर बैलगाड़ी से बाँधकर गाँव में निर्वस्त्र घुमाया गया। इस अपमान के बाद हिंसा का एक ताण्डव खेला गया जिसमें शामिल थे – यौन हमला और हत्या। यह भयानक नरसंहार पूरे गाँव के सामने किया गया और लाशों को पास की नहर में फेंक दिया गया। उच्च जाति के करीब 70 लोगों ने, जिसमें महिलाएँ भी शामिल थीं, इस हिंसक कार्यवाही में हिस्सा लिया। इसके बाद गाँव में एक सभा बुलाई गई जिसमें सभी को आदेश दिया गया कि इस घटना के बारे में किसी भी बाहरवाले से चर्चा नहीं की जाए।

भोटमंगे परिवार के मुखिया भैयालाल ही उस परिवार में अकेले जिंदा बचे थे क्योंकि हमले के

समय वे घर पर नहीं थे। भीड़ से छुपते हुए, लाचार होकर वे सारा मंज़र देख रहे थे। और किसी तरह पुलिस थाने पहुँचकर उन्होंने इस घटना की रपट दर्ज कराई। पुलिस ने अगले दिन क्षत-विक्षत लाशें मिल जाने के बाद ही एफ.आई.आर. दर्ज की।

संदर्भ

नागपुर से लगभग 120 किलोमीटर दूर 181 घरों वाला खैरलांजी नामक एक गाँव है जिसकी आबादी 700 के लगभग है। गाँव में तीन दलित परिवार हैं जिसमें से भोटमंगे एक हैं। यहाँ कुन्बी और कलार जाति का प्रभुत्व है जो महाराष्ट्र में अन्य पिछड़ी जाति में आती हैं। इस परिवार पर क्रूर हमला कोई अकस्मात घटना नहीं थी। भोटमंगे परिवार को करीब पिछले 20 वर्षों से प्रताड़ित किया जा रहा था। भारत में अन्य दलित परिवारों की तुलना में भोटमंगे कुछ प्रभुत्व जातियों के परिवारों से बेहतर स्थिति में थे। उन्होंने अपने तीनों बच्चों को पढ़ाने की हिम्मत की। वे अपने लिए एक पक्का घर बनाना चाहते थे। ऊँची जातिवालों ने इसे अवमानना के रूप में देखा।

गाँव की पंचायत भैयालाल का नाम राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज करने से लगातार मना कर रही थी और इस प्रकार उसे पक्का घर बनाने से रोक रही थी। जब भी वे घर बनाने की कोशिश करते, उसे ज़बरदस्ती गिरा दिया जाता और भैयालाल को काम आगे बढ़ाने पर गम्भीर परिणाम भुगतने की धमकी दी जाती। परिणामस्वरूप वे झोंपड़ी में रहने को मजबूर थे। इस प्रसंग में आर्थिक सामर्थ्य की बजाय सामाजिक स्थिति (जाति के आधार पर) पक्के घर के लिए निर्णायक कारक साबित होती है। भोटमंगे के पास मूलतः सात एकड़ ज़मीन थी जिसमें वे चावल और रुई उगाते थे। 1996 में इस ज़मीन का दो एकड़ हिस्सा सड़क बनाने के लिए ऊँची जाति वाले किसानों द्वारा ज़बरदस्ती ले लिया गया।

घटना का तात्कालिक कारण था सिद्धार्थ गजभिए नामक एक दलित पुलिस पाटिल का 3 सितम्बर 2006 को खैरलांजी के कुछ लोगों द्वारा पीटा जाना। भोटमंगे के परिवारवालों ने, जिन्होंने घटना को देखा था, ज़िम्मेदार नागरिकों की तरह पुलिसवालों के सामने गवाही दी जिसके कारण गाँव के कुछ ऊँची जाति के लोगों की गिरफ्तारी हो गई। जब उन्हें ज़मानत पर छोड़ा गया तो गाँव के ऊँची जाति के लोगों ने दलितों को, जिन्होंने उनकी सत्ता को चुनौती दी थी, सबक सिखाने का निश्चय किया और इस हमले की योजना बनाई।

पुलिस को ऐसी कार्यवाही का अंदेशा था लेकिन फिर भी इसे रोकने के लिए उन्होंने कोई कदम नहीं उठाए। उस दिन हत्या के बाद पास के पुलिस थाने के पुलिस इंस्पेक्टर अन्य सिपाहियों के साथ गाँव आए और बाहरी छोर पर सरपंच से मिलकर ही वापिस चले गए। जब भैयालाल शिकायत दर्ज कराने के लिए पुलिस थाने गए तो

शुरु में पुलिस ने शिकायत दर्ज करने से मना कर दिया। लेकिन अगले दिन पीड़ितों की लाशें मिलने के बाद एक औपचारिक एफ.आई.आर. दर्ज की गई।

चिकित्सा अधिकारी ने यौनांगों की जाँच किए बिना ही रपट बनाई कि प्रियंका और सुरेखा (जिनकी हत्या करने के पहले सामूहिक बलात्कार किया गया था) की मौत सदमे व शारीरिक चोटों के कारण हुई थी। पुलिस से लिखित आवेदन मिलने के बावजूद खून के नमूने नहीं लिए गए।

यद्यपि सुरेखा के सिर पर बड़े घाव का निशान था लेकिन पोस्टमॉर्टम रपट में इसका ज़िक्र नहीं था। 30 सितम्बर की प्रथम पोस्टमॉर्टम रपट दावा करती है कि कोई भी बलात्कार नहीं हुआ था। दलितों और अन्य कार्यकर्ताओं के दबाव में बाद में लाशों को खोदकर निकाला गया और 5 अक्टूबर 2006 को दूसरा पोस्टमॉर्टम किया गया। इस समय भी उन्होंने पीड़ितों के यौन उत्पीड़न पर बहुत अस्पष्ट और गोलमाल रपट पेश की और एफ.आई.आर. में भी यौन अत्याचार का उल्लेख नहीं किया गया।

अदालती मकदमा

अंततः मामला भंडारा की फास्ट ट्रैक सत्र अदालत में चलाया गया जिसने 15 सितम्बर 2008 के अपने फैसले में घोषणा की कि आठ लोग हत्या के दोषी हैं और ग्यारह आरोपियों में से तीन को बरी कर दिया। आठ अपराधियों में से छह लोगों को मौत की सज़ा सुनाई गई और दो को उम्र कैद की सज़ा दी गई। फैसले में यह स्पष्ट है कि “खैरलांजी एक हत्या का मामला था और यह पास के गाँव के पुलिस पाटिल पर हमले के पहले के एक मामले का बदला लेने के लिए किया गया था।” जज ने अनुसूचित जाति और

अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 (पीओए अधिनियम के नाम से जाना जाता है) के प्रावधानों को लागू करने पर कोई विचार नहीं किया। यह एक क्रांतिकारी कानून माना जाता है, हालाँकि यह शायद ही कभी अक्षरशः लागू हुआ हो। जज ने भारतीय दण्ड संहिता के धारा 354 (एक औरत का शीलभंग करने के इरादे से हमला या आपराधिक बल का उपयोग करना) या धारा 375 और 376 (क्रमशः बलात्कार और बलात्कार के लिए सज़ा हेतु उपयोग होता है) भी लागू नहीं किया, बावजूद इसके कि अक्टूबर-नवम्बर 2006 की कई स्वतंत्र तथ्य जाँच रपटों ने यह साबित किया था कि माँ और बेटी, यानी सुरेखा और प्रियंका भोटमंगे के साथ न केवल बार-बार बलात्कार किया गया बल्कि भयंकर तरीके से अत्याचार किया गया (कथित तौर पर बैलगाड़ी की तीलियों को ज़बरदस्ती योनियों में डाला गया)। इसके अलावा जज ने धारा 120 ए और 120 बी (जो आपराधिक षड़यंत्र और आपराधिक षड़यंत्र रचने के लिए सज़ा हेतु इस्तेमाल किए जाते हैं) भी लागू नहीं किए और इस मामले को जातिगत घृणा, यौन हिंसा और कोई भी आपराधिक षड़यंत्र की तरह न लेते हुए केवल बदला लेने के लिए की गई हत्या के रूप में देखा।

यद्यपि पीड़ित दलित हैं व दोषी उच्च जाति से हैं और नरसंहार के समय पीड़ितों पर जाति-विशेष गालियों का इस्तेमाल किया गया था, और जाति-आधारित अपराधों के अभियोग के लिए कानून के एक साधन के रूप में राज्य संस्थानों के पास पीओए अधिनियम मौजूद है, फिर भी अदालत को इसे इस्तेमाल करने का कोई कारण नहीं मिला। एक धर्मनिरपेक्ष तर्क के पक्ष में अपराध के जाति-आधारित पहलुओं को नज़रअंदाज़ कर दिया गया। फैसले के मुताबिक, दोषी व्यक्ति सिद्धार्थ गजभिए पर किए गए हमले के मामले में सुरेखा और



प्रियंका द्वारा दी गई गवाही के आधार पर हुई उनकी गिरफ्तारियों को लेकर खफा थे। खैरलांजी हत्याओं में आरोपी बनाए गए 11 अपराधियों को गजभिए पर हमले के लिए भी अपराधी करार दिया गया। इस प्रकार यह मान लिया गया कि हत्या बदले की भावना से की गई थी। जज ने उन्हें धारा 302, 148 (घातक हथियारों से लैस हुड़दंग मचाने के लिए), 149 (एक उद्देश्य की पैरवी में इकट्ठा हुए अवैध सभा के प्रत्येक सदस्य अपराध के दोषी हैं) और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 201 (सबूत नष्ट करने या दोषियों को बचाने के लिए झूठे सबूत पेश करने के लिए) के तहत हत्या का दोषी ठहराया। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 354 के बारे में उन्होंने कहा कि अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में सक्षम नहीं था कि उन दो महिलाओं के कपड़े हमले के पहले या बाद में फाड़ दिए गए थे।

जातिगत हिंसा के सबत मिटाना

अभियोजन पक्ष ने जाति-आधारित अत्याचारों से सम्बन्धित सभी सबूतों को मिटाने का भरसक प्रयास किया और अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति अधिनियम लागू नहीं किया। इससे जातिवाद के व्यवस्थात्मक और संस्थागत व्यवहार

का पता चलता है। नरसंहार वहाँ मौजूद लोगों के सामने खुल्लम-खुल्ला हुआ और किसी ने भी विरोध नहीं किया। इससे यह पता चलता है कि जाति की विचारधारा समाज में कितनी गहराई में बैठी हुई है। इन दर्शकों को अपराध में शामिल न करके राज्य की संस्थाएँ जाति-आधारित अत्याचारों को बर्दाश्त करने की अपनी प्रवृत्ति के बारे में बताती हैं।

सत्र अदालत द्वारा मौत की सज़ा सुनाया जाना इस बात को धुँधला कर देता है कि मामले में न तो पीओए अधिनियम और न ही बलात्कार के नियमों को लागू किया गया। बहुत से लोग यह महसूस करते हैं कि यद्यपि सज़ा उपयुक्त थी परन्तु न्याय की गुणवत्ता ठीक नहीं थी। इस अस्पष्टता के कारण मौजूद हैं। दलितों के खिलाफ अत्याचारों के प्रति सुस्त रवैये के लिए बदनाम व्यवस्था ने इस विशेष अपराध के दोषियों को कड़ी सज़ा दी है। चूँकि ऐसे अपराध की सज़ा असामान्य है, यह अपने आपमें कुछ संतुष्टि का स्रोत है। ऐसा इसलिए क्योंकि पीओए अधिनियम के अस्तित्व के बावजूद दलितों के लिए कानूनी उपाय नगण्य रहा है। हालाँकि, छह व्यक्तियों को मौत की सज़ा सुनाई गई फिर भी अपराध के दो सबसे स्पष्ट पहलुओं – यानी जाति-आधारित नफरत और बलात्कार को नकार दिया गया।

यहाँ मामला वास्तव में समाज में प्रचलित बर्बर और प्रतिगामी सामाजिक ढाँचे और सामंती मूल्यों को बनाए रखने के लिए किए गए नरसंहार का था। अपराधियों ने गुस्से में आकर परिवार का नरसंहार नहीं किया; उनका गुस्सा क्षणिक नहीं था। यह किसी निजी दुश्मनी से उत्पन्न नहीं हुआ था; परिवार ने उनको उकसाने या परेशान करने के लिए कुछ नहीं किया था। भोटमंगे परिवार ने केवल एक 'अपराध' किया था, अपनी अछूत जाति के लिए ज़िम्मेदार निम्न सामाजिक

स्थिति से मुक्ति पाने का प्रयास किया था। सदियों से दलितों के हिस्से में आने वाले अमानवीय अस्तित्व से बाहर आने की उनकी कोशिश उँची जाति के हत्यारों को उकसाने के लिए पर्याप्त थी।

इसलिए, इस मामले में ज़िला अदालत द्वारा मौत की सज़ा सुनाया जाना सामाजिक न्याय के लिए कोई जीत नहीं है। ज़ाहिर है कि न्यायपालिका अभियोजन पक्ष की घटिया जाँच एवं कमज़ोर तर्कों से आश्वस्त हो गई जिसने घटना को मात्र बदला लेने के लिए की गई हत्या के रूप में चला देने का प्रयास किया।

खैरलांजी नरसंहार हिन्दुस्तान की कल्पना और विचार को ही नकार देती है। यह हमारे खोखले व हीन लोकतंत्र का खुलासा करता है। दुर्भाग्यवश, यह भारतीय समाज में दुष्ट तत्वों द्वारा किया गया कोई अकेला मामला नहीं है। दरअसल, यह कई घटनाओं में से मात्र एक है।

मुम्बई उच्च न्यायालय की नागपुर खण्डपीठ में फैसले के खिलाफ अपील की थी जहाँ अप्रैल 2010 में सुनवाई शुरू हुई। 14 जुलाई को उच्च न्यायालय की नागपुर खण्डपीठ ने छह दोषियों की मृत्युदण्ड की सज़ा को 25 साल के सश्रम कारावास की सज़ा में बदल दिया। उम्र कैद की सज़ा वाले अन्य दो आरोपियों को भी इसी तरह की सज़ा सुनाई गई।

ज़ाहिर है भैयालाल भोटमंगे और कई सामाजिक कार्यकर्ताओं ने, जिन्होंने इस मामले पर काम किया था, फैसले पर क्षुब्धता व निराशा व्यक्त की। वे उम्मीद कर रहे थे कि सी.बी.आई. उच्चतम न्यायालय में अपील करेगी। पर सी.बी.आई. ने अभी तक कोई कार्यवाही नहीं की है। भोटमंगे ने उच्चतम न्यायालय में अपील की है जिसका निर्णय अभी लंबित है।

आफ़सपा के अन्तर्गत दण्ड से मुक्ति: थांगजम मनोरमा का बलात्कार और हत्या

“हम माताएँ आ गई हैं। हमारा खून पियो। हमारा मांस खाओ। शायद इस तरीके से तुम हमारी बेटियों को बख़्श दो।”

(माइरा पाइबी का विरोध प्रदर्शन, जुलाई 15, 2004)

यह कहानी है 32 वर्ष की थांगजम मनोरमा देवी की जो मणिपुर के पूर्वी ज़िले इम्फाल में रहती थी। 11 जुलाई 2004 के शुरुआती घंटों में, पैरामिलिट्री असम रायफल्स ने भूमिगत अलगाववादी समूह के साथ सम्बन्ध होने के शक के आधार पर मनोरमा को उसके घर से उठा लिया। आधी रात के कुछ देर बाद ही जवानों ने बमोन कम्पू गाँव में स्थित उनके घर पर छापा मारा और उनके परिवार से बाहर इन्तज़ार करने को कहा जब तक कि वो पूछताछ कर रहे थे। इसके बाद उन्होंने अरेस्ट मैमो (लोगों को 'गायब' कर दिए जाने से राकेने के लिए गिरफ्तारी की गई है इसे स्वीकार करता हुआ आधिकारिक दस्तावेज़) पर हस्ताक्षर किए और उन्हें लेकर चले गए। बाद में उसी दिन, पास के गाँव में उनका अर्द्धनग्न क्षतिग्रस्त शरीर पाया गया। उनके शरीर के आधे हिस्से - निचले भाग - पर गोली मारी गई थी, इससे यह आशंका उत्पन्न हुई कि बलात्कार के सबूत को मिटाने के लिए गोलियों का इस्तेमाल

किया गया था।

मनोरमा की हत्या के मामले में सुरक्षा बलों की भूमिका पर राज्यभर में तीखी प्रतिक्रिया हुई और बड़े पैमाने पर मीडिया का भी ध्यान आकर्षित हुआ। मणिपुर में विरोध फूट पड़ा, साथ ही राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार संगठनों ने इस मामले की तुरन्त जाँच करने और घटना के लिए उत्तरदायी दोषियों के विरुद्ध अभियोग की माँग की। इस बात से चिन्तित कि सरकार इस बार भी जवानों को हत्या के लिए ज़िम्मेदार नहीं ठहराएगी, जैसा कि पहले भी अनेकों बार हुआ है, मणिपुर की आम जनता सड़कों पर उतर पड़ी। न्याय की माँग करते हुए छात्र, वकील, व्यापारी, माताएँ, पत्रकार और मानव अधिकार कार्यकर्ताओं ने रोज़ जुलूस निकाले। विरोध स्वरूप एक व्यक्ति ने आत्मदाह किया और कई अन्यो ने आत्महत्या की कोशिश की।

पैरामिलिट्री असम रायफल्स का दावा था कि

मनोरमा ने जब भागने की कोशिश की तब उसको गोली मारी गई। बाद में, शपथपत्रों में जवानों ने घुमाव देते हुए कहा कि दूसरे आतंकवादी को पकड़वाने में सेना की मदद के दौरान मनोरमा ने भागने की कोशिश की। इस स्पष्टीकरण को स्वीकारना मुश्किल है: एक शस्त्रहीन, हाथों में हथकड़ी पहनी महिला जिन्होंने कसकर बंधा हुआ मणिपुरी सारंग पहना हुआ था, जिससे लम्बे डग भरना सम्भव नहीं है, वो सशस्त्र जवानों की गिरफ्तारी से भाग निकली। और यदि उन्होंने ऐसा किया भी तो जवान उन्हें पकड़ क्यों नहीं पाए, उन्हें गोली मारकर ढेर क्यों किया गया? इसका भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया कि क्यों मनोरमा को असम रायफल्स ने पुलिस अभिरक्षा में नहीं सौंपा, क्योंकि कानून तो यही है। या रात को गिरफ्तारी के समय नियमानुसार किसी महिला सुरक्षा अधिकारी को क्यों नहीं लाया गया।

मनोरमा को गिरफ्तार कर उन्हें ले जाने का काम सुरक्षा बल इसलिए कर सका क्योंकि उसे आर्म्ड फोर्सिस स्पेशल पावर्स एक्ट (आफ्सपा) के तहत यह अधिकार है। 1958 में पारित इस आपातकालीन कानून के अंतर्गत सेना को आंतरिक कलह के इलाकों में भेजा जा सकता है, जहाँ उन्हें गिरफ्तारी, तलाशी और गोली मारने (मार डालने तक) के व्यापक अधिकार उपलब्ध होते हैं। 55 साल पुराने इस कानून ने सुरक्षाबलों को अभियोजन से मुक्ति दे रखी है और हत्याओं के दोषी असम रायफल्स एवं जम्मू-कश्मीर और भारत के उत्तरपूर्व के दूसरे राज्यों के जवानों को सिविल जज के सामने हत्या व दूसरे अपराधों के लिए अभियोजित होने से संरक्षण प्रदान कर रखा है।

वारदातों का सिलसिला

सुरक्षा अधिकारियों का दावा था कि थांगजम

मनोरमा देवी अलगाववादी पीपुल्स लिबरेशन आर्मी की खतरनाक सदस्य थी। उनके अनुसार, मनोरमा कई बम कांडों के लिए उत्तरदायी थी, जिनमें से एक बम कांड में कुछ जवान मारे गए थे। मनोरमा के परिवार का स्पष्ट कहना था कि वह शांतिपूर्ण कार्यकर्ता थी और किसी भी तरह की आपराधिक गतिविधियों में शामिल नहीं थी। ज्यादातर मानव अधिकार कार्यकर्ताओं और पत्रकारों का निजी मत है कि मनोरमा भूमिगत संगठन की सदस्य थी लेकिन उनकी भूमिका के बारे में उन सब के मत अलग-अलग थे। शायद सच कभी पूरी तरह से सामने नहीं आए क्योंकि मनोरमा के खिलाफ कोई पुलिस कम्प्लेंट दर्ज ही नहीं की गई थी, न ही उन्हें अदालत तक पहुँचने का कोई मौका मिला।

(क) गिरफ्तारी

असम रायफल्स का बयान

असम रायफल्स के अनुसार, 10 जुलाई 2004 को अधिकारियों को पुख्ता जानकारी मिली कि प्रतिबंधित पीपुल्स लिबरेशन आर्मी की सदस्य जिसकी पहचान 'पी.एल.ए. नम्बर 1262, कॉरपोरल मनोरमा देवी उर्फ हेंथोई' के तौर पर की गई, और जो 1995 से आतंकी गतिविधियों में सक्रिय थी, बामोन कम्पू माई लेकई क्षेत्र में है। वह इम्प्रोवाइज्ड एक्सप्लोसिव डिवाइज़ की विशेषज्ञ और पी.एल.ए. की मुखबिर थी।

17वीं असम रायफल्स के कमांडेंट कर्नल जगमोहन सिंह द्वारा दायर याचिका में कहा गया कि मनोरमा की उस क्षेत्र में उपस्थिति के प्रति सिजनमई में पदस्थ सभी अधिकारियों को सतर्क किया गया। 11 जुलाई की मध्यरात्रि के कुछ समय बाद ही उस इलाके में प्राथमिक चेक पोस्ट स्थापित की गई जिसने मनोरमा के गाँव में स्थित अपने घर

में होने की पुष्टि की। इसके तुरन्त बाद असम रायफल्स ने ऑपरेशन शुरू किया और इलाके को घेरने के लिए सैनिकों को भेजा गया। मनोरमा को गिरफ्तार करने के लिए सुबह तीन बजे के आसपास सैनिकों ने घर का दरवाज़ा खटखटाया। सैनिकों ने गिरफ्तारी मैमो दिखाया और उसे हिरासत में ले लिया।

मनोरमा के परिवार का बयान

मनोरमा के परिजनों का कहना था कि पहले-पहल असम रायफल्स के सात या आठ जवान आधी रात के बाद घर में मनोरमा की उपस्थिति की पुष्टि के लिए आए। मनोरमा के छोटे भाई दोलेन्द्रो सिंह के अनुसार, मुख्य सड़क से 17वीं असम रायफल्स के कई जवान उनके घर में दाखिल हुए। घुसते ही उन्होंने तेज़ी से घर की तलाशी शुरू कर दी और कोई कारण भी नहीं बताया। मनोरमा की बूढ़ी माँ, थांगजम खुमनलेमाई जाग गईं। एक सैनिक ने उन पर बन्दूक तान दी और मनोरमा के बारे में पूछा। इसी दौरान, मनोरमा भी जाग गई और अपने कमरे से बाहर आ गई। सैनिक मनोरमा को खींचकर बाहर ले जाने लगे। जब उसके भाइयों ने सैनिकों को रोकने की कोशिश की तो उनके साथ मारपीट की गई। मनोरमा की माँ, भाइयों और अन्य रिश्तेदारों को घर के पिछवाड़े के अहाते में इन्तज़ार करने को कहा गया जबकि उसको घर के सामने वाले हिस्से में ले गए। उनके रिश्तेदारों का कहना है कि सैनिकों ने मनोरमा से पूछताछ की और उसे यातनाएँ दी। सुबह 3.30 के आसपास सैनिक अहाते में आए और जानकारी दी कि मनोरमा को हिरासत में लिया जा रहा है। गिरफ्तारी मैमो पर हस्ताक्षर किए गए और मनोरमा की माँ और भाइयों से 'नो क्लेम सर्टिफिकेट' पर हस्ताक्षर करने को कहा गया। 'नो क्लेम सर्टिफिकेट' में

यह कहा गया था कि घर की तलाशी लेने और गिरफ्तारी करने वाले असम रायफल्स के जवानों के खिलाफ उनका कोई दावा नहीं है और यह भी कि सैनिकों ने महिलाओं के साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया और सम्पत्ति को कोई क्षति नहीं पहुँचाई। जब उस रात असम रायफल्स के जवान मनोरमा को घर से ले गए थे तब वह जीवित थी।

(ख) हत्या

गांववालों को मनोरमा का गोलियों से छलनी शरीर 11 जुलाई 2004 को सुबह 5.30 बजे उसके घर से चार किलोमीटर दूर नगरियान मरिंग के करीब मिला। असम रायफल्स के अनुसार, मनोरमा को हिरासत में लेने के बाद जवान उसे पास के पुलिस स्टेशन के हवाले करने वाले थे। उन्होंने कहा कि मनोरमा ने बताया कि उसकी आंतकी साथी, एस.एस. रूबी, के पास ए.के. 47 हमलावर रायफल है और इस सूचना की वजह से वे मनोरमा की साथी का पीछा करने में जुट गए। हालाँकि जब टोली मनोरमा द्वारा बताई गई जगह पहुँची तो मनोरमा ने कहा कि उससे गलती हो गई है और फिर अलग-अलग जगहों पर सैनिकों को ले गई। हर बार मनोरमा ने कहा कि उससे कुछ गलती हो गई है। इस तरह दो घंटे तक यहाँ-वहाँ भटकने के बाद, उनका कहना था कि सुबह होते ही मनोरमा ने भागने की कोशिश की, तब उन्होंने उसे गोली मार दी।

यदि यह वर्णन सही भी होता, तब भी सेना ने भारतीय कानून का उल्लंघन किया। जैसा कि असम रायफल्स की याचिका की सुनवाई करने वाले गुवाहाटी हाई कोर्ट के जस्टिस डी. बिस्वास ने अपने अन्तिम निर्णय में लिखा है:

यह साक्ष्य है कि महिला कॉन्सटेबल के

बिना ही छापे की कार्यवाही की गई, जबकि पूरे घर को घेरा गया था, महिला कॉन्सटेबल की सेवा उपलब्ध कराने के लिए सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस से सम्पर्क करने का कोई प्रयास नहीं किया गया, गिरफ्तार महिला को नज़दीकी पुलिस स्टेशन को नहीं सौंपा गया, गिरफ्तारी के बाद उससे पूछताछ की गई और दूसरी महिला कैडर की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह ले जाया गया और गिरफ्तारी के समय कु. थांगजम मनोरमा देवी के खिलाफ कोई प्रथम सूचना प्रतिवेदन (एफ.आई.आर.) लम्बित नहीं थी।

इन सब प्रक्रियात्मक निष्फलताओं के अलावा भी कई अन्य कारण हैं जिनकी वजह से असम रायफल्स द्वारा वर्णित घटनाक्रम पर संदेह होता है। 12 जुलाई 2004 को मणिपुर सरकार ने मनोरमा की हत्या के मामले में जाँच-कमीशन बिठाने के आदेश पारित किए। हालाँकि कमीशन की अन्तिम रपट जनता को उपलब्ध नहीं कराई गई, सुनवाई के दौरान मनोरमा के परिवार की ओर से पैरवी करने वाले वकीलों को असम रायफल्स के सदस्यों, जाँच अधिकारियों, डॉक्टरों, गवाहों और रिश्तेदारों के बयान उपलब्ध थे। वकीलों ने मानव अधिकार आयोग को बताया:

गिरफ्तार करने वाली पार्टी के सदस्यों ने जाँच आयोग के समक्ष कहा कि मनोरमा जब हिरासत में थी तब उसके हाथ बँधे हुए थे। उसके परिजनों ने भी कहा कि जिस समय उसकी गिरफ्तारी हुई उसने पारम्परिक मणिपुरी सारंग पहन रखा था। कसकर बँधे सारंग और और हाथ बँधे होने के कारण मनोरमा के लिए दूर तक भागना असम्भव ही रहा होगा।

असम रायफल्स के किसी भी सदस्य का यह दावा नहीं था कि पेट्रोल पार्टी के किसी सदस्य ने मनोरमा के पीछे दौड़कर उसे रोकने की कोशिश की थी। उनका कहना था कि चिल्लाकर चेतावनी देने के बाद, सैनिकों ने गोलियाँ चला दीं जिससे उसकी मौत हो गई।

हिरासत के दौरान मनोरमा के पास कोई हथियार नहीं था, जिसके कारण यह समझना मुश्किल है कि क्यों जवानों ने एक सुरक्षित दूरी रखी और गोलियाँ चलाईं। घटना स्थल पर गोली के खाली कार्ट्रिज नहीं पाए गए, जिससे पेट्रोल पार्टी के इस कथन पर सन्देह होता है कि उसे रोकने के लिए आपाधापी में गोलियाँ चलाई गईं।

मनोरमा के शरीर पर गोलियों के छह घाव होने के बावजूद शरीर के आसपास खून नहीं पाया गया। जिससे यह सन्देह होता है कि उसकी हत्या कहीं और की गई और बाद में लाश वहाँ फेंक दी गई।

पुलिस सर्जन और फॉरेंसिक विशेषज्ञ जिसने कमीशन के समक्ष गवाही दी, का कहना था कि शरीर पर गोलियों के जिस तरह के निशान हैं उससे पता चलता है कि काफी करीब से गोली मारी गई है और जिस समय गोली मारी गई मनोरमा लेटी हुई थी। उसने यह भी खुलासा किया कि शरीर पर अन्य तरह की चोटों के घाव भी मिले जो दर्शाते हैं कि मारे जाने से पहले मनोरमा को यातना दी गई।

सेंट्रल फॉरेंसिक साइंस लेबोरेट्री की रपट में मनोरमा के कपड़ों पर वीर्य के धब्बे पाए गए, जिससे लगता है कि मौत से पहले उसके साथ बलात्कार किया गया होगा।

पोस्टमॉर्टम के बाद, पुलिस ने मनोरमा का शव उसके परिजनों को अन्तिम संस्कार के लिए देना चाहा लेकिन उसके परिजनों ने कहा कि जब तक दोषियों को सज़ा नहीं मिलती और राज्य से आपस्पा नहीं हटता वे शव नहीं लेंगे। 24 जुलाई 2004 को, राज्य सरकार ने पुलिस को आदेश दिया कि वो मनोरमा का अन्तिम संस्कार कर दे।

विरोध

जब मनोरमा का मृत शरीर मिला तब उसकी दाईं जाँघ पर गहरी खरोंचें और घाव थे जो सम्भवतः चाकू से किए गए थे। मनोरमा के परिजनों के अनुसार, उसके शरीर पर यातना दिए जाने के निशान भी थे, जैसे नील और खरोंचें। गुप्तांग पर गोलियाँ मारी गई थीं जिससे इस आशंका को बल मिलता है कि गोली मारने से पूर्व उसके साथ बलात्कार किया गया। मनोरमा की हत्या के बाद मणिपुर में आक्रोश से भरे विरोध हुए। 12 जुलाई 2004 को अनेक सामाजिक संगठनों ने विरोधस्वरूप 48 घंटे के बंद का आवाहन किया। न्याय की माँग करती हुई तख्तियाँ लेकर प्रदर्शनकारियों ने रैलियाँ निकालीं और टायर जलाए गए।

15 जुलाई 2004 को हुए एक अत्यन्त सशक्त विरोध ने मनोरमा की हत्या को राष्ट्रीय खबर बना दिया। महिलाओं का एक समूह 17वीं असम



फोटो: http://E-Pao picture gallery/AFSPA_rally/03

रायफल्स के मुख्यालय के सामने इकट्ठा हुआ और फिर उन्होंने अपने समस्त कपड़े उतार दिए, यह कहते हुए कि जिस तरह से मनोरमा के साथ बलात्कार किया उसी तरह हमारे साथ भी सेना बलात्कार करे। ये सब महिलाएँ माइरा पाइबी, जिसका अर्थ है टॉर्च वाहक, से सम्बन्धित थीं - - जिसे मदर्स फ्रंट भी कहा जाता है। इसकी शुरुआत सामाजिक मुद्दों जैसे कि पुरुषों के शराब पीने की समस्या, बच्चों में नशे की लत को सम्बोधित करने के लिए हुई थी। परन्तु सशस्त्र संघर्ष गहराया, माइरा पाइबी मानव अधिकार के दुरुपयोग को रोकने और राज्य से आपस्पा को हटाने की इस मुहिम में भी शामिल हो गईं। विरोध करने वाली महिलाओं में से एक एल. ज्ञानेश्वरी ने कहा:

मनोरमा की हत्या ने हमारे दिलों को तोड़ा है। गिरफ्तारी के बाद लोगों को यातनाओं से बचाने के लिए हमने गिरफ्तारी मैमो के लिए अभियान चलाया था। फिर भी इससे हम जवानों को उसका बलात्कार और हत्या करने से रोक नहीं सके। सैनिकों ने उसके शरीर को बुरी तरह से क्षतिग्रस्त किया और उसकी योनि में गोलियाँ मारीं। हम माएँ रो रही थीं, "अब हमारी बेटियों के साथ बलात्कार किया जाएगा। उन्हें इस क्रूरता का शिकार बनाया जाएगा। प्रत्येक लड़की को खतरा है।" हमने अपने कपड़े उतारे और सेना के सामने खड़े हो गए। हमने कहा, "हम माएँ आ गई हैं। हमारा खून पियो। हमारा मांस खाओ। शायद तब तुम हमारी बेटियों को छोड़ दोगे।" लेकिन उन जवानों को सज़ा देने के लिए कुछ नहीं किया गया। मणिपुर की महिलाएँ आपस्पा द्वारा निर्वस्त्र कर दी गई थीं। हम अभी भी निर्वस्त्र हैं।

कफर्यू आदेशों के बावजूद जल्द ही विरोध पूरे राज्य में फैल गया। कई सरकारी दफ्तर जला दिए गए। पुलिस द्वारा भीड़ पर नियंत्रण पाने के दौरान अनेक जख्मी हुए। 24 जुलाई 2004 को, आफ्स्पा को हटाने की माँग करते हुए पाँच युवाओं ने मुख्यमंत्री निवास के सामने आत्मदाह का प्रयास किया। उनमें से तीन गम्भीर रूप से जल गए थे। अगस्त में, विरोध को शांत करने की कोशिश करते हुए मुख्यमंत्री ओ. ईबॉबी सिंह ने इम्फाल शहर से आफ्स्पा को हटाने का निर्णय लिया। लेकिन विरोध जारी रहा, आफ्स्पा को पूरी तरह हटाने की माँग के साथ। 15 अगस्त 2004, आत्मदाह का एक और प्रयास किया गया। इस बार मणिपुर स्टुडेंट फेडरेशन के पीबम चितरंजन ने अपनी ज़िन्दगी खोई। चितरंजन की मौत के बाद एक बार फिर विरोध का दौर फूट पड़ा जो नवम्बर तक जारी रहा, जब प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह मणिपुर पहुँचे। सिविल सोसायटी समूहों के शीर्ष प्रतिनिधि मंडल अपुनबा लूप से बैठक के बाद सिंह ने कहा कि वे इस कानून की समीक्षा का आदेश देंगे और “इस पर भी विचार करेंगे कि इसकी जगह एक ज़्यादा मानवीय कानून बनाया जाए।”

इंसाफ की नाकामी

12 जुलाई 2004 को मनोरमा का शव मिलने के बाद उसके भाई थांगजम दोलेंद्र सिंह ने इरिलबंग पुलिस स्टेशन में लिखित शिकायत दर्ज की। पुलिस ने प्रथम सूचना प्रतिवेदन दर्ज की और बलात्कार की पुष्टि और अपराध करने वालों की पहचान के लिए फॉरेंसिक और डी.एन.ए. जाँच का आदेश दिया।

किसी को भी विश्वास नहीं था कि पुलिस असम रायफल्स के सदस्यों के खिलाफ हत्या के आरोपों

की जाँच करेगी। विरोधों के परिणामस्वरूप, मणिपुर सरकार ने तुरन्त सेवानिवृत्त ज़िला जज सी. उपेन्द्र सिंह की अध्यक्षता वाले आयोग को इस मामले में मौत के लिए उत्तरदायी तथ्य और परिस्थितियों की जाँच और भविष्य में इस तरह की घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो इसके लिए सुझाव देने का आदेश दिया। आयोग को एक माह में अपनी रपट देने को कहा गया।

19 अगस्त 2004 को गुवाहाटी उच्च न्यायालय के समक्ष असम रायफल्स ने याचिका दायर की जिसमें कहा गया कि मणिपुर सरकार को संघीय सुरक्षा बलों के आचरण की जाँच करने के लिए आयोग गठित करने का कोई अधिकार नहीं है। और इसलिए अधिकारियों को इस आयोग के समक्ष उपस्थित होने की बाध्यता नहीं होगी। यह भी दावा किया गया कि आर्मी कोर्ट की जाँच प्रगति पर है और ऐसे में उन्हीं पहलुओं की पुनः जाँच आवश्यक नहीं है। याचिका में यह भी कहा गया कि असम रायफल्स मणिपुर में आफ्स्पा के अन्तर्गत संचालित हो रही है, जिसकी धारा 5 में प्रावधान है कि केंद्र सरकार की पूर्ववर्ती स्वीकृति को छोड़कर इस अधिनियम के अधीन अपनी शक्तियों का उपयोग करने वाले लोगों के विरुद्ध अभियोजन, वाद या अन्य विधिक प्रक्रियाएँ नहीं की जाएँगी। असम रायफल्स ने कहा कि उपेन्द्र आयोग को ‘अन्य विधिक प्रक्रिया’ माना जा सकता है। चूँकि केंद्र सरकार से किसी तरह का अनुमोदन नहीं हासिल किया गया है, मणिपुर सरकार द्वारा आयोग बनाने की अधिसूचना “अवैधानिक, शून्य और विधिक-प्रभावहीन” है। जब तक याचिका की सुनवाई चल रही है, असम रायफल्स ने कमीशन की कार्यवाही पर रोक लगाने को कहा।

28 अगस्त 2004 के अन्तरिम आदेश में हाई कोर्ट ने उपेन्द्र आयोग की कार्यवाही पर रोक लगाने से

इंकार कर दिया। हालाँकि जज ने कहा कि अन्तिम रपट बिना कोर्ट की पूर्ववर्ती आज्ञा के प्रकाशित नहीं की जाएगी। आदेश में यह भी कहा गया कि रिट याचिका पर अन्तिम निर्णय इस रपट की अनुसंशाओं पर प्रभाव डाल सकता है। न्यायालय ने असम रायफल्स के अधिकारियों को आदेश दिया कि दोषियों की कैमरा जाँच की अनुमति दी जाए और इस तक पहुँच केवल सम्बन्धित पार्टियों और उनके वकीलों की होगी। 22 नवम्बर 2004 को जज उपेन्द्र सिंह ने अपनी रपट मणिपुर सरकार को सौंपी लेकिन कोर्ट के आदेश के चलते इसे सार्वजनिक नहीं किया गया। जज सी. उपेन्द्र सिंह ने कहा, “मैंने सुरक्षा बलों के लोगों के खिलाफ अपना निर्णय दिया था और फिर सुरक्षा बल के लोगों ने हाई कोर्ट में अपील की। वे अपनी मनमर्जी करते हैं, उन्हें इस देश के कानून की कोई परवाह नहीं है।”

महज इसलिए कि आर्म्ड फोर्सिस (स्पेशल पावर) अधिनियम, 1958 के अन्तर्गत मणिपुर राज्य को अशान्त क्षेत्र घोषित किया गया है क्या यह कहा जा सकता है कि सुरक्षा बलों की सारी कार्यवाहियाँ जिसमें बलात्कार, यातनाएँ और निहत्थे नागरिकों की हत्याएँ शामिल हैं अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत दी गई परिभाषा 'सिविल शक्तियों की सहायता से' में शामिल होगी।

असम रायफल्स ने भी यह कहते हुए एक अपील दायर की कि चूँकि मणिपुर सरकार को जाँच आयोग गठित करने की विधिक शक्ति नहीं थी अतः रपट अमान्य की जानी चाहिए। असम रायफल्स द्वारा गठित जाँच न्यायालय ने 27 जुलाई 2004 को जाँच खत्म कर दी लेकिन रपट को सार्वजनिक नहीं किया गया। इम्फाल में सेना के प्रवक्ता मेजर एस.डी. गोस्वामी ने इतना ही कहा, “इस तरह की कार्यवाहियों में सेना के अधिकारियों द्वारा दिए गए निर्देशों के क्रियान्वयन में असम रायफल्स के जवानों द्वारा चूक हुई है। हम आगे भी तहकीकात को जारी रख रहे हैं और

23 जून 2005 को अपने अन्तिम निर्णय में हाई कोर्ट ने घोषित किया कि मणिपुर सरकार का राज्य में तैनात सुरक्षा बलों पर कोई प्रशासनिक नियंत्रण नहीं है, सुरक्षा बलों पर केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण है। जज ने केन्द्र सरकार से कहा, “कानूनी प्रावधानों के अनुरूप रपट पर कार्यवाही हो और ज़रूरी फॉलोअप के लिए कदम उठाए जाएँ।”

मणिपुर सरकार ने गुवाहाटी हाई कोर्ट में पब्लिक ऑर्डर के हित में इस तरह की जाँच करने के उसके अधिकार को सुरक्षित रखने की अपील की, क्योंकि यह राज्य सरकार का उत्तरदायित्व है। यह भी कहा गया कि सुरक्षा बलों की गतिविधियों में जाँच के दौरान आकस्मिक अतिक्रमण होने से राज्य सरकार का न्यायाधिकार समाप्त नहीं होता। मनोरमा के परिवार ने भी अपील की कि:

यदि कोई दोषी पाया जाएगा तो उससे गम्भीरता से निपटा जाएगा।”

राज्य सरकार और आफस्प्या की शक्तियों के आमने-सामने होने और उपेन्द्र कमीशन रपट पर अपीलों के सम्बन्ध में गुवाहाटी हाई कोर्ट ने एक महत्वपूर्ण निर्णय दिया। अलग-अलग दायर तीन याचिकाएँ जो मनोरमा के परिजनों, राज्य सरकार और असम रायफल्स द्वारा पूर्व में सिंगल बेंच द्वारा पारित निर्णय के विरुद्ध दायर की गई थीं, में राज्य सरकार को यह अनुमति दी गई कि वह जाँच रपट को खोलकर उस पर कार्यवाही कर



फोटो: http://E-Pao picture gallery/AFSPA_rally/02

सकती है। 31 अगस्त को जस्टिस अमित्व रॉय और बी.डी. अग्रवाल ने गुवाहाटी में अपने सैद्धांतिक बेंच में यह फैसला सुनाया।

इस निर्णय के बाद मनोरमा के परिवार वाले और वकीलों ने राज्य सरकार के समक्ष इस बात को लेकर ज्ञापन दिया कि जाँच रपट राज्य की केबिनेट के समक्ष रखी जाए और उसकी अनुसंशाओं पर बिना और देरी के कार्यवाही की जाए।

नाइंसाफी जारी है

इस रपट के प्रकाशन के समय भी मनोरमा देवी के बलात्कार और हत्या का मामला उच्चतम न्यायालय के समक्ष लम्बित है क्योंकि केंद्र द्वारा

गुवाहाटी हाई कोर्ट की डिवीज़न द्वारा सितम्बर 2010 को पारित आदेश को चुनौती देते हुए स्पेशल लीव पेटिशन दायर की है। गुवाहाटी हाई कोर्ट ने अपने निर्णय में राज्य सरकार को यह अनुमति दी थी कि वह मनोरमा की हत्या से सम्बन्धित तथ्यों और परिस्थितियों पर आधारित बन्द जाँच रपट को खोले और कार्यवाही करे।

मनोरमा के परिवार को आज भी इंसाफ का इन्तज़ार है, उनकी हत्या के आठ साल बाद, यह आशा है कि उनका नाम मणिपुर की उन महिलाओं की सूची में शामिल नहीं होगा जो यौन हिंसा का शिकार बनीं व जिनकी हत्या की गई और जिन्हें न्याय नहीं मिला।

निष्कर्ष

जब हम डब्ल्यू.एस.एस. के रूप में एकजुट हुए तो हमने अपने सामने एक लक्ष्य यह रखा था कि हमारे पास जो मामले आएँगे उनका हम व्यवस्थित फॉलोअप करेंगे। हम नहीं चाहते थे कि सिर्फ इसलिए न्याय न हो पाए क्योंकि हिंसा के मामलों पर पूरा ध्यान नहीं दिया गया और सत्तावान पक्ष को मनमानी करने का मौका मिल गया। इस फॉलोअप और इसके चलते विभिन्न एजेन्सियों, जैसे- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग आदि से सम्पर्क करने के हमारे अनुभव से निम्नलिखित सरोकार उभरते हैं:

1. कानून के रखवालों से सावधान: सामान्य हालातों में भी पुलिस थाना एक खतरनाक जगह है, खासकर एक गरीब या दलित महिला के लिए। आमला, जो कि एक गैर-अशान्त क्षेत्र है, में हुआ बलात्कार इस सच्चाई को रेखांकित करता है। वहाँ से आगे चलकर जैसे-जैसे राजनीतिक और जातिगत दादागिरियाँ स्थिति को जटिल बनाती जाती हैं, आप सोच ही सकते हैं कि किसी महिला के लिए थाने की भयावहता कितने गुना बढ़ती जाती होगी।

2. सबूतों के साथ सुनियोजित छेड़छाड़: जाँच एजेन्सियों, राजनेताओं और प्रशासन की मिलीभगत हर तरफ व्याप्त है। शोपियाँ, बैतूल, खैरलांजी में ये इतना ज़्यादा हुआ है कि हिंसा की मूल घटना ही गायब हो गई है और सबूतों को ऐसे सजाया गया है कि वे भी यही बताते हैं। मामला चाहे शोपियाँ के आम लोगों का हो जिन्होंने उन महिलाओं को ट्रक पर से चिल्लाते हुए देखा, या बैतूल में दोदेल बाई का बलात्कार और हत्या जिसे उनके समुदाय के लोगों ने देखा, या खैरलांजी के दलित परिवार की महिलाओं के बलात्कार और हत्या का हो जहाँ पूरे परिवार को मार डाला गया सिवाय एक सदस्य के जो कि चश्मदीद गवाह है, मुकदमे या जाँच के दौरान इन सबके बयानों को नकार दिया गया। मृतक महिलाओं का शव परीक्षण इतने हल्के-फुल्के तरीके से किया जाता है कि बार-बार परीक्षण करने के बाद भी अन्त तक ये भ्रम बना रहता है कि उनके साथ यौन हिंसा हुई भी थी या नहीं।

3. मामले दर्ज करने में आने वाली परेशानियाँ: बहुत से मामले दर्ज ही नहीं होते। उदाहरण के लिए आरती माँझी का केस देखें। आपने ध्यान दिया होगा कि उनके साथ पुलिस थाने ले जाते हुए यौन हमला हुआ था जिसके बाद वे दो महीने तक लापता रहीं। उनका परिवार दो महीने बाद ही उनसे सम्पर्क कर पाया। इस दौरान उनके आसपास ऐसा कोई नहीं था जिसके पास वे शिकायत कर पातीं और जो किसी प्रकार की कार्यवाही करने की ज़िम्मेदारी लेता। एक साधारण ग्रामीण लड़की कैसे

जाने कि शिकायत कैसे लिखवाई जाती है? उसे क्या पता कि किन चीजों को सबूत माना जाएगा? पारदी महिलाओं का सामूहिक बलात्कार एक और ऐसी घटना है जिसमें पूरे समुदाय को ही विस्थापित कर दिया गया और पाँच साल तक कहीं भी पैर जमाने नहीं दिया गया। और इस बीच यौन हिंसा का मामला दर्ज ही नहीं हुआ। कुछ समय के लिए ऐसा लगा कि सी.बी.आई. मामले को गम्भीरता से ले रही है पर उसने भी जल्दी ही इसमें लिप्त काँग्रेसी नेताओं का पक्ष ले लिया और यौन हिंसा की शिकायत को पूरी तरह से गायब कर दिया।

4. कानून के हाथ बहुत छोटे हैं: सोनी सोरी को छत्तीसगढ़ ले जाकर प्रताड़ित किए जाने के पहले से ही उन्हें छत्तीसगढ़ पुलिस के दमन की आशंका थी। फिर भी उनकी सुरक्षा के लिए कोई वैकल्पिक उपाय नहीं किए गए। साकेत, नई दिल्ली के सत्र न्यायालय ने उन्हें उसी पुलिस के हवाले कर दिया जिसने न्यायालय से झूठ बोलकर तीन दिन की रिमाण्ड की माँग की थी और जिसने सुरक्षित हिरासत के न्यायालय के आदेशों का बेशर्मी से उल्लंघन किया। इस गलत कार्यवाही की भरपाई कैसे होगी? विडम्बना तो यह है कि प्रताड़ना के ठोस सबूतों के सामने आने के बावजूद उनका मामला लगभग एक साल से सुनवाई के लिए आया ही नहीं है।

5. तरह-तरह के सुरक्षा बल - चोर-चोर मौसेरे भाई: इसका सबसे उम्दा उदाहरण शोपियाँ में दो महिलाओं के साथ हुए बलात्कार और हत्या का मामला है। महिला संगठनों द्वारा बार-बार सामने लाई गई उस बात को ये केस पुष्ट करता है कि पुलिस अन्य सुरक्षा बलों को बचाती है। शोपियाँ के मामले में यही बात जन आयोग और उच्च न्यायालय ने भी कही। पर अन्तिम नतीजा यह है कि उन पुलिस अधिकारियों को घटनास्थल के फोटो खींचने से चूक जाने की गम्भीर लापरवाही की सज़ा तक नहीं दी गई। सी.बी.आई. ने एक ज़बरदस्त काल्पनिक कहानी गढ़ डाली जिसमें एक ही बात स्थिर रहती थी, कि पुलिस बेकसूर है क्योंकि हिंसा तो हुई ही नहीं। इस बात का कोई महत्व ही नहीं था कि पुलिस ने उन सब लोगों के खिलाफ मामले दर्ज कर डाले जो उनके सुर में सुर नहीं मिला रहे थे।

6. सामाजिक पूर्वाग्रहों का फायदा उठाना: माओवाद, आतंकवाद, उग्रवाद और नैतिक आचार के प्रति सामाजिक रवैये का इस्तेमाल करके हिंसा की घटना के महत्व को कम कर दिया जाता है। इस तरह सोनी सोरी, मीना खालको और आरती माँझी को माओवादी करार दिया गया और मनोरमा को बागी। इसी तर्ज पर आम जनता, जो हथियारबन्द लड़ाकुओं के प्रति कम सहानुभूति रखती है, अक्सर ये मानती हुई दिखाई देती है कि बागियों और उग्रवादियों के आधारभूत मानवाधिकार भी नहीं होने चाहिए। माओवादी या उग्रवादी होने के आरोप बिना किसी आधार के लगाए जा सकते हैं क्योंकि पुलिस द्वारा दर्ज सभी एफ.आई.आर. में एक लम्बे विवरण और बहुत से नामों की सूची के बाद अपराध को दर्ज किया जाता है। ये सब बहुत बढ़ा-चढ़ाकर लिखा जाता है जो बाद में साबित नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए आरती माँझी को देखिए – वो उन पर लगाए गए सभी मामलों में बरी हो चुकी हैं। इसी तरह सोनी सोरी भी उन दो मामलों में बरी हो चुकी हैं जिनमें सुनवाई निर्णय तक पहुँच पाई है।

7. जातिगत पूर्वाग्रह: विचारों में अन्तर के कारण से होने वाले भेदभाव का विपरीत असर हमेशा

दलितों और आदिवासी पीड़ितों पर पड़ता है जिन्हें इन्सान होने लायक ही नहीं समझा जाता। पारदियों के मामले में एक पूरे समुदाय को ही चोर बताया जाता है। इस तरह से न्याय की ओर जाने वाला रास्ता उनके लिए हर कदम पर मुश्किल से मुश्किल होता जाता है। इसी तरह चरित्र हनन केवल इन मामलों में ही नहीं बल्कि बलात्कारों के सभी मामलों में एक आम हथियार बन जाता है।

इस तरह के पूर्वाग्रहों से अलग से निपटना होगा। भारतीय कानून व्यवस्था में किसी भी अपराध के लिए सज़ा के तौर पर बलात्कार नहीं सुझाया गया है। मारपीट या हिंसा करना, यौन सम्बन्ध की माँग करना या पैसे उगाहना जैसे अपराधों के लिए व्यवस्थित सज़ा निर्धारित है पर इन मामलों में आरोपियों के प्रति पुलिस की ज्यादतियों को आम समाज नज़रअन्दाज़ कर देता है। इस तरह हिरासती हिंसा को जायज़ बनाया जाता है।

8. एक के बदले में दूसरे को गिरफ्तार करना: सुरक्षा बलों की नाकामी को छुपाने के लिए आरोपियों के रिश्तेदारों, बहनों, बेटियों को गिरफ्तार कर लिया जाता है। आरती माँझी को इसी तरह से पुलिस ने गिरफ्तार किया था, वे दरअसल उनके भाई को ढूँढते हुए आए थे। इसी तरह मार्च 2009 में गढ़चिरोली, महाराष्ट्र में पुलिस ने एक नाबालिग लड़की को गाँव-तलाशी के दौरान उठा लिया, उसकी आँखों पर पट्टी बाँधकर उसका सामूहिक बलात्कार किया और फिर उसे गिरफ्तार कर लिया। इसी तरह (हालाँकि यह केस इस दस्तावेज़ का हिस्सा नहीं है) डब्ल्यू.एस.एस. 2010 में झारखण्ड में तीन स्कूली छात्राओं से मिली थी जिन्हें माओवादियों के बदले में गिरफ्तार किया गया था और बाद में मीडिया के सामने कट्टर माओवादी कहकर प्रस्तुत किया गया। जब राष्ट्रीय बाल अधिकार सुरक्षा आयोग द्वारा एक सवाल पूछे जाने के बाद से ही इन लड़कियों पर लगाए गए आरोपों पर पुलिस ने अपनी कार्यवाही रोक दी तब यह साबित हो गया कि वे मासूम थीं। पुलिस इस तरह के तौर-तरीकों का अक्सर इस्तेमाल करती है और छोटे-मोटे अपराध में लिप्त लोगों के बारे में जानकारी लेने की कोशिश में अक्सर इन परिवारों की महिलाओं को यौन हिंसा की धमकी दी जाती है।

9. युवतियों पर मँडराता खतरा: जिन इलाकों में तलाशी या कोम्बिंग की जा रही हो वहाँ की कम उम्र की लड़कियाँ बहुत अधिक खतरे में जीती हैं। ऊपर से नाबालिग लड़कियों को वयस्क दिखाकर बाल न्याय अधिनियम का भी उल्लंघन किया जाता है।

10. गायब होती महिलाएँ: महिलाएँ लापता हो जाती हैं और कई महीनों तक न्याय तक उनकी पहुँच नहीं होती। जेल में बन्द या अन्य कारणों से हिरासत में ली गई महिलाएँ न्याय तक अपनी पहुँच खो देती हैं और दूसरी ओर न्यायपालिका के पास मुकदमा झेल रहीं या शिकायत करने वाली महिलाओं (वादी) और गवाहों की सुरक्षा को सुनिश्चित करने का कोई इन्तज़ाम नहीं है।

11. कठघरे में मीडिया: पुलिस के साथ-साथ ही या तो घटनाओं के बारे में न छापकर या सिर्फ पुलिस का पक्ष छापकर लोगों में असंवेदनशीलता पनपाने की ज़िम्मेदारी मीडिया की भी है। पुलिस जब किसी माओवादी को पकड़ती है तो उसे प्रतिष्ठा, पदोन्नति और पैसे भी मिलते हैं। इसलिए वह ऐसी खबरों को मीडिया तक जल्द से जल्द पहुँचाती है पर मीडिया तथ्य की गहराई तक पहुँचने के लिए कम ही मेहनत करती है। झारखण्ड की उन तीन स्कूली लड़कियों को पकड़ने, या ओडिशा

की माओवादी महिलाओं के आत्मसमर्पण करने, या माओवादियों या बागियों द्वारा की गई यौन हिंसा की खबरों को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है ताकि इसका फायदा उठाया जा सके।

12. असंवेदनशील आयोग: आयोग अपने आधारभूत उद्देश्यों का पालन न करते हुए हिंसा के मामलों में एक-दूसरे के साथ खो खेलते हुए दिखाई देते हैं। साथ ही वे मानव अधिकार के मुद्दों पर काम करने वाले जनसंगठनों से भी दूरी बनाए रखते हैं। सोनी सोरी की हिरासती प्रताड़ना के मामले में पीपुल्स यूनिनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़ (पी.यू.सी.एल.) और डब्ल्यू.एस.एस. ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग से हस्तक्षेप की माँग की थी पर उसने कोई जवाब नहीं दिया। शोपियाँ के मामले में भी उन्हें भेजे गए खुले पत्र का कोई जवाब नहीं मिला। सोनी सोरी द्वारा और उनकी ओर से महिला संगठनों द्वारा की गई बार-बार की शिकायतों के बावजूद राष्ट्रीय महिला आयोग ने कुछ नहीं किया। वे लगातार कहते रहे कि वे इस मामले को नहीं उठाएँगे क्योंकि यह न्यायालय में विचाराधीन है। हकीकत यह है कि राष्ट्रीय महिला आयोग ने पूरे एक साल तक यह भी पता लगाने की ज़हमत नहीं उठाई कि सुप्रीम कोर्ट के समक्ष किस प्रकार का मुकदमा चल रहा है और बगैर यह जाने ही उसने सोनी सोरी की फाइल बन्द कर दी।

13. प्रतिरोध को कुचलना: कश्मीर और झारखण्ड जैसे इलाकों में लोगों में हताशा फैली हुई है और कोई ऐसी घटनाओं की शिकायत भी नहीं लिखाना चाहता। जिन इलाकों में सेना व अर्द्धसैनिक बलों को प्रतिरोध को कुचलने की ताकत दी गई है वहाँ पर घेराबन्दी और तलाशी के चलते बड़ी मात्रा में बलात्कार की घटनाएँ हुई हैं। इसी से डब्ल्यू.एस.एस. का यह नारा भी उपजा – घेराबन्दी, तलाशी और बलात्कार, ये हैं शासन के हथियार।

14. गवाहों को खतरा: गवाहों और उनके परिवारों को हत्या या आत्महत्या की हद तक परेशान किया जा रहा है। छत्तीसगढ़ की सोढ़ी सम्भो सुरक्षा बलों द्वारा की गई एक झूठी मुठभेड़ की चश्मदीद गवाह थीं। इस घटना में उनके पैर में भी गोली लगी थी। पुलिस ने उन्हीं को पकड़ लिया और अब वे पिछले दो साल से लापता हैं। संघर्ष के इलाकों में गवाहों की सुरक्षा एक गम्भीर चिन्ता का विषय है। दरअसल खैरलांजी में भी एक अन्य केस में दी गई गवाही के कारण ही हिंसा भड़की थी। शोपियाँ में 13 लोगों के खिलाफ इसलिए चार्जशीट दाखिल की गई है क्योंकि उनके बयान सी.बी.आई. की काल्पनिक कथा से मेल नहीं खाते।

पुलिस की गुंडा वर्ग के साथ गहरी साँठगाँठ होती है और वह इसका इस्तेमाल तथ्य जाँचों व समर्थन समूहों के खिलाफ लोगों की आवाज़ के बतौर करता है। डब्ल्यू.एस.एस. के बनने के कुछ ही समय बाद दिसम्बर 2009 में महिलाओं की एक टीम ओडिशा के नारायणपटना में तलाशी के दौरान स्थानीय औरतों के साथ हुई अत्याचार की खबरों की जाँच करने गई थी। अत्याचार की घटना के विरोध में कई प्रदर्शन हुए और एक प्रदर्शन में पुलिस द्वारा चलाई गई गोली से वहाँ का एक आन्दोलनकारी नेता मारा गया था। उपरोक्त महिला जाँच टीम को घटना के इलाके में जाने से रोक दिया गया, थाने में बिठाए रखा गया और वहाँ गुंडे उन्हें परेशान करते रहे। इसी तरह जब डब्ल्यू.एस.एस. की टीम दंतेवाड़ा जा रही थी तो पहले उन्हें पुलिस और उनके गुंडों द्वारा परेशान किया गया और आगे बढ़ने से रोक दिया गया। बाद में रायपुर लौटने पर भी उन्हें इन गुंडा-तत्वों

से निपटने को अकेला छोड़ दिया गया और उनकी करतूतों के चलते यह दल अपनी प्रेसवार्ता भी नहीं कर पाई। महिला संगठनों को जेल में या अस्पताल में सोनी सोरी से मिलने से मना कर दिया गया। नवम्बर 2011 में जब एक जाँच टीम ओडिशा में एक तथाकथित आत्मसमर्पण करने वाली महिला से मिलने गई तो उन्हें काम पूरा करने से पहले ही लौटने को मजबूर किया गया। अखबारों की रिपोर्टों से पता चला कि बाद में इस महिला को भी पुलिस ने परेशान किया था। इन्हें भी अपने भाई के साथ गिरफ्तार किया गया था। अब तक के महज़ तीन साल के कार्यकाल में ही डब्ल्यू.एस.एस. ने इतने व्यापक मानवाधिकारों के हनन का सामना किया।

राज्य का सन्देश स्पष्ट है – अधिकारों के हनन को चुपचाप बर्दाश्त करो क्योंकि हम न तो न्याय होने देंगे और न ही किसी को समर्थन या मदद करने देंगे।

इन हिंसाओं के बहुत कम ऐसे पीड़ित बचे हैं जो सक्रिय भी हैं। जैसा हमने पहले बताया कि न्याय की बहुत धुँधली सम्भावना ने कई ऐसे गाँवों को चुप करा दिया है जहाँ तलाशी की कार्यवाही हुई है। कश्मीर से लेकर उत्तर-पूर्व तक और झारखण्ड से लेकर ओडिशा तक हमारी टीमों को यौन हिंसा के मामलों में तब तक चुप्पी ही मिली जब तक कि उसके कारण कोई मौत, हत्या या आत्महत्या न हुई हो। इस कारण एक जीवित और पीड़ित लड़ाकू के रूप में सोनी सोरी की इकलौती आवाज़ अनोखी है। जेल में बार-बार की गई उनकी भूख हड़ताल और उनके पत्र – जिनके लिए उन्हें कई बार निर्वस्त्र तलाशियाँ झेलनी पड़ी हैं – भीड़ भरी जेलों में बन्द, पुलिस और जेल प्रशासन का अत्याचार सहने वाली असंख्य महिलाओं द्वारा भोगी जा रही वास्तविकताओं की मार्मिक तस्वीर हैं।

आगे की राह

इस दस्तावेज़ में शामिल केस समस्या की विकरालता की हमें केवल एक झलक भर देते हैं। हम 1979 से हिरासती बलात्कार का विरोध कर रहे हैं, पर अब जब जीवन और आजीविका के अधिकारों के अनुसार अपनी वैध आकांक्षाओं को हासिल करने वाले लोगों के संघर्षों को दबाने के लिए राजसत्ता ही हिंसा पर उतारू है, तो स्थिति बद से बदतर ही हुई लगती है।

हमारी माँगें सिर्फ चन्द केसों की सुनवाई या समाधान तक सीमित नहीं हैं, बल्कि जनतांत्रिक आन्दोलनों के प्रति राज्य के रवैये में आमूल परिवर्तन से सम्बन्ध रखती हैं।

अतः हम माँग करते हैं कि:

- एक जनतांत्रिक, संवैधानिक राजनीतिक व्यवस्था को अपने ही लोगों के खिलाफ सेना या केन्द्रीय सशस्त्र पुलिस बल जैसी ताकतों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। बल्कि उसे देश के हरेक नागरिक की समस्याओं और माँगों का समाधान जनतांत्रिक संस्थाओं के ज़रिए जनतांत्रिक तरीकों से करना चाहिए।
- सेना और केन्द्रीय सशस्त्र पुलिस बल को आर्म्ड फोर्सिस स्पेशल पावर्स एक्ट (आफसपा) के तहत मिले सुरक्षा कवच के अलावा, उस अधिकार से और ज़्यादा बचाव मिल जाता है जिसके तहत वे अपने आरोपी अधिकारियों पर सामान्य आपराधिक अदालत में मुकदमा चलाने की बजाय केवल कोर्ट मार्शल के द्वारा ही मुकदमा चला सकते हैं। इस तरह की दण्डमुक्ति की व्यवस्थाएँ सभी जनतांत्रिक मूल्यों और कानून के राज को ध्वस्त कर देती हैं। आफसपा जैसे काले कानूनों को रद्द किया जाना चाहिए और सेना अधिनियम जैसे कानूनों के तहत सुरक्षा बलों को मिली आड़ को खत्म किया जाना चाहिए।
- छत्तीसगढ़ विशेष जन सुरक्षा अधिनियम, कानून-विरोधी गतिविधि रोकथाम अधिनियम, राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 124 ए के तहत देशद्रोह के लिए सज़ा के प्रावधान जैसे सभी अलोकतांत्रिक कानूनों को रद्द किया जाना चाहिए जिनका इस्तेमाल जनान्दोलनों और न्याय, आत्मसम्मान और आजीविका के लिए हो रहे संघर्षों के खिलाफ किया जा रहा है।
- सलवा जुद्धम और मणिपुर, कश्मीर और मध्य भारत के अन्य संघर्षरत इलाकों में राज्य के समर्थन से चलाए जा रहे सभी निजी सेनाओं और सुरक्षा या निगरानी दलों को तत्काल खत्म किया जाना

चाहिए। इन दलों के उन सदस्यों पर कार्यवाही की जानी चाहिए जिन पर यौन हिंसा या अन्य मानवाधिकारों के हनन के आरोप हैं।

- दलित, आदिवासी या अल्पसंख्यक या अन्य हाशिये पर धकेले गए समुदायों की महिलाओं के साथ हुए हिंसा के मामलों में जुल्म ढाने वाले की सामाजिक प्रधानता और वर्चस्व को भी ध्यान में रखना चाहिए और इन मामलों की तहकीकात इस तरह की प्रताड़नाओं के लिए उपलब्ध कानूनों के तहत की जानी चाहिए।
- संघर्षरत इलाकों में यौन हिंसा या अन्य प्रताड़नाओं की घटनाओं की जाँच के दौरान महिला संगठनों और लोकतांत्रिक अधिकार संगठनों को डराना-धमकाना और उनकी गतिविधियों को बाधित करना तुरन्त बन्द होना चाहिए। महिला कार्यकर्ताओं और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को बदनाम करना, डराना-धमकाना और प्रताड़ित करना भी बन्द होना चाहिए।
- मनमाने ढंग से या तलाश किए जा रहे व्यक्ति के एवज़ में उसके परिवारजनों की गिरफ्तारी और तलाशी के दौरान महिलाओं और बच्चों को गैरकानूनी रूप से रोके रखने की घटनाएँ बन्द होनी चाहिए।
- मीडिया में गिरफ्तार किए लोगों को बदनाम करने और बलात्कार या महिलाओं की गिरफ्तारी की खबरों को प्रचार-प्रसार के माध्यमों की तरह इस्तेमाल करने पर रोक लगाई जानी चाहिए। इस संदर्भ में मीडिया को अपने खबर बटोरने के काम में और ज़िम्मेदारी और संजीदगी दर्शाना होगी।
- ज़िला प्रशासन और न्यायपालिका को यह सुनिश्चित करना होगा कि गिरफ्तारी, पूछताछ और हिरासत में रखने, पुलिस या न्यायिक हिरासत में बन्द रखने आदि के समय ज़रूरी प्रक्रिया (जैसे डी.के.बसु दिशानिर्देश आदि) का सही-सही पालन हो। साथ ही न्यायपूर्ण व त्वरित मुकदमे चलाने की भी व्यवस्था करनी होगी, खासकर उन लोगों के लिए जो जोखिमग्रस्त या हाशिये पर धकेले गए समुदायों से हैं।
- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, अनुसूचित जातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग और सभी राज्यों के महिला आयोगों जैसी संस्थानों को बनाया तो गया था कि वे कमज़ोर तबके के लोगों के लिए संवैधानिक अधिकारों की रक्षा करें। आज इन्हें और सक्रिय होना पड़ेगा। इनके पास आने वाले हरेक मामले का एक समयबद्ध तरीके से निराकरण किया जाना चाहिए।

ठोस माँगें:

विशेष दिशानिर्देश - हिरासती हिंसा के मामलों में यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि किसी महिला या व्यक्ति के साथ जिस थाने के कर्मचारियों द्वारा हिंसा की गई हो, वह या उसके परिवार के लोग उसी थाने में उस घटना की शिकायत लिखवाने जा पाएँ। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा पुलिस मुठभेड़ में मृत्यु के लिए जिस तरह दिशानिर्देश जारी किए गए हैं, उसी तर्ज़ पर हिरासती हिंसा के मामलों के लिए भी विशेष दिशानिर्देश तैयार किए जाने चाहिए।

हिरासती हिंसा को परिभाषित करना - सुरक्षा बलों, पुलिस कर्मचारियों या उनके साथ काम कर रहे विशेष सुरक्षा अधिकारियों द्वारा किए गए यौन उत्पीड़न के हर मामले को, बिना इस बात की परवाह किए कि वह कहाँ घटित हुआ, हिरासती हिंसा का दर्जा देने की ज़रूरत है। ऐसा इसलिए कि ऐसे मामलों में हिंसा करने वाले उस इलाके के लोगों पर अपनी ताकत और पद के कारण एक सत्तावान के रूप में हावी होते हैं।

प्रताड़ना की रोकथाम अधिनियम के दायरे में विस्तार लाना - अनुसूचित जाति तथा जनजाति (प्रताड़ना की रोकथाम) अधिनियम, 1989 को विस्तार देते हुए हिरासती हिंसा, मारपीट या अन्य प्रकार की यातनाएँ, ऐसी हिंसा को उकसाना या बढ़ावा देना, हर प्रकार की यौन हिंसा – चाहे वह शारीरिक हो या शब्दिक, तथा दलित व आदिवासी महिलाओं को अपमानित करना भी इसमें शामिल करना चाहिए। इन कानूनी सुधारों को जाति-आधारित हिंसा की खास प्रकृति को पहचानना होगा और यह भी समझना होगा कि जब ऊँची जाति के लोग इस तरह की हिंसा बरपाते हैं तो किस प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक भेदभावों की स्थिति इसे सम्भव बनाती है।

केस दर्ज करना - आपसपा जैसे न्याय-विरोधी काले कानूनों से मिली बचाव की आड़ में छिपने की बजाय सभी पीड़ितों की शिकायतों पर प्रथम सूचना रपट दर्ज किया जाना चाहिए, भले ही हिंसा करने वाला सेना का अधिकारी हो या केन्द्रीय सशस्त्र पुलिस बल से हो।

आपराधिक कार्यवाही - सेना या केन्द्रीय सशस्त्र पुलिस बलों द्वारा किए गए यौन हिंसा के मामलों को आपराधिक कानूनों के तहत लाया जाना चाहिए। कानून में यह स्पष्ट होना चाहिए कि यौन हिंसा के मामलों में सुरक्षा बल को आरोपी पर कार्यवाही करने का कोई अधिकार नहीं है। आरोपी को पुलिस के हवाले कर देना चाहिए और सारी तहकीकात और कार्यवाही पुलिस द्वारा, किसी वरिष्ठ अधिकारी की निगरानी में, कानूनी तरीके से की जानी चाहिए। हिरासती यौन हिंसा और अन्य मानवाधिकारों के हनन के मामलों में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत कार्यवाही के लिए अनुमति लेने की ज़रूरत के प्रावधान को खत्म कर देना चाहिए।

जाँच हेतु - एक बार प्रथम सूचना रपट दर्ज हो जाए तो आरोपी की तत्काल गिरफ्तारी और सभी आरोपियों को उनके पद से निलम्बित करना आवश्यक है।

- जब तक शिकायत का सम्पूर्ण निराकरण न हो जाए, तब तक आरोपी को उस इलाके में कोई आधिकारिक काम करने नहीं दिया जाना चाहिए जहाँ यौन हिंसा की शिकायत दर्ज की गई है।
- नागरिक, प्रशासकीय और राजनैतिक पदों पर बैठे सभी लोगों को, और राज्य की सत्ता जताने वाले सभी अधिकारियों (जिनमें सब सरकारी मुलाज़िम शामिल हैं) को अपने कर्तव्यों के पालन में विफल होने के लिए आपराधिक ज़िम्मेदारी और जवाबदोही के दायरे में लाना चाहिए।

उच्चतर अधिकारियों की ज़िम्मेदारी - राज्य के मुलाज़िमों द्वारा किए गए यौन हिंसा के मामलों में सरकारी ढाँचें में पदासीन उच्चतर अधिकारियों (पुलिस अधीक्षक और ज़िलाधीश या अन्य कोई भी उच्च अधिकारी जो केन्द्रीय सशस्त्र पुलिस बलों की श्रृंखला में ऊपर बैठे हों) को उनके अधीन या उनके नियंत्रण में काम करने वाले कर्मचारियों द्वारा किए गए हिंसा के लिए आपराधिक तौर पर

ज़िम्मेदार माना जाना चाहिए। उनके इलाके या काम के दायरे में होने वाले यौन हिंसा के बारे में जानकारी न होना या जानकारी की कमी को उनके कार्यवाही न करने का बहाना नहीं बनने दिया जा सकता।

तेज़ गति से जाँच - पूर्वाग्रह-ग्रसित, देरी से या लापरवाही से की गई जाँच के लिए ज़िम्मेदार कर्मचारियों को सज़ा दी जानी चाहिए। सही जाँच की ज़िम्मेदारी जाँच कर रही एजेन्सी के ऊपर है। सबूत जुटाने में बरती गई देरी, लापरवाही, अधकचरापन या पूर्वाग्रह और मेडिकल जाँच की कमी या देरी को आपराधिक गतिविधि और अपने कर्तव्य की अवहेलना के रूप में लिया जाना चाहिए। इसके लिए ज़िम्मेदार अधिकारियों व कर्मचारियों पर या तो अपने कर्तव्य न निभाने के लिए या फिर अपराध में साथ देने या बचाने की कोशिश करने के जुर्म में कार्यवाही और सज़ा होनी चाहिए।

महिला कैदियों की सुरक्षा - महिला पुलिसकर्मियों की कमी, खासकर दूरस्थ इलाकों और छोटे थानों में इनकी कमी (जिनके होने से शायद महिला कैदी और हिरासत में ली गई महिलाएँ कुछ सुरक्षित हो सकती हैं) एक गम्भीर मामला है। यदि थाने में कोई महिला कॉन्स्टेबल पदस्थ न हो तो उस थाने को किसी भी महिला को गिरफ्तार करने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

संघर्षरत इलाकों में जोखिम - जब कोई महिला यौन हिंसा के खिलाफ शिकायत दर्ज कराने का साहस दिखाती है तो ज़िला और राज्य प्रशासन की तरफ से उसके प्रति गम्भीरता और त्वरित कार्यवाही दिखाने की ज़रूरत है। इसकी बजाय बलात्कार की पीड़िता, उसके परिवार के सदस्य और दूसरे गवाहों को सरकारी पदों पर बैठे लोग और डराते हैं। प्रशासन को ऐसी शिकायतों की जानकारी मीडिया या अन्य स्रोतों से होने पर, इनका अपनी ओर से सुओ मोटो संज्ञान लेना चाहिए।

कानून का राज - हिरासत में ली गई महिलाओं की सुरक्षा का खास ध्यान रखने की ज़रूरत है और उनके साथ की जा रही कानूनी कार्यवाही में सभी प्रक्रियाओं को पूरी तरह से नियमानुसार किया जाना ज़रूरी है। यह भी ध्यान रखने की ज़रूरत है कि किसी महिला को गिरफ्तार करने के बाद नियमानुसार 24 घंटे के भीतर - जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी - अदालत में पेश करने की ज़रूरत है ताकि वह मूल शिकायत और उसके बाद हिरासत में होने वाली किसी और परेशानी के बारे में बता सके।

न्यायपालिका की ज़िम्मेदारी - अगर किसी आरोपी को गिरफ्तार करने में कोई गड़बड़ियाँ की गई हों या उसे अदालत में पेश करने में देरी हुई हो तो न्यायपालिका को इसका सुओ मोटो संज्ञान लेकर इस पर कार्यवाही करनी चाहिए। डी.के. बसु दिशानिर्देशों और आपराधिक कार्यवाही संहिता के पालन में यदि कोई हेर-फेर हुई हो तो अदालत को इस पर कड़ा रुख अपनाकर कार्यवाही करनी चाहिए। एक बार कोई औरत न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत की जाती है तो उसके बाद से उसके सुरक्षा और आत्मसम्मान की रखवाली की और उसकी शिकायतों के निवारण की ज़िम्मेदारी न्यायाधीश की है। यदि पुलिस या न्यायिक हिरासत में किसी महिला के अधिकारों का हनन होता है तो अदालत की ज़िम्मेदारी है कि वह समयबद्ध तरीके से ऐसा करने वालों पर कड़ी कार्यवाही करे।

पीड़ितों और गवाहों की सुरक्षा - हाल में न्यायिक क्षेत्र में हुए विकास, अगस्त 2006 के लॉ कमीशन की 198वीं रपट और सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों के मद्देनज़र, मुकदमा शुरू होने के पहले से लेकर

सज़ा सुनाए जाने के बाद तक पीड़ितों और गवाहों की सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है।

जवाबदेही और खामियाजा - यह सरकार की ज़िम्मेदारी और कर्तव्य है कि वह औरतों के हकों की रक्षा करे। यह ज़िम्मेदारी तब कई गुना बढ़ जाती है जब कोई औरत सरकारी हिरासत (हिफाज़त) में है। ऐसे में अगर कोई यौन हिंसा होती है, तो इस गुनाह की गम्भीरता को देखते हुए पीड़िता को खामियाजा का हक बनता है। हालाँकि आर्थिक मुआवज़े से घटना के कारण हुई पीड़ा और तकलीफों से छुटकारा नहीं मिल सकता, फिर भी राज्य की यह ज़िम्मेदारी है कि प्रशासनिक देरी के बगैर ऐसे मामलों में यथोचित मुआवज़ा दे।

न्यायोचित मदद - राज्य को चाहिए कि वह महिला के मेडिकल इलाज, मनोवैज्ञानिक देखभाल, आसरा और आजीविका की पूरी ज़िम्मेदारी उठाए ताकि यौन हिंसा के कारण महिला पर मँडराने वाले सामाजिक बहिष्कार और परित्यक्त होने के खतरे से वह उबर सके। यौन हिंसा के लिए मौजूद मुआवज़ा स्कीमों और कानूनी प्रावधानों को लागू करने के लिए ज़रूरी बजट प्रावधान बनाकर और उनका पालन मुस्तैदी से करके ऐसा किया जा सकता है। इस तरह के मुआवज़े को अदालत में चल रहे आपराधिक मामले से अलग रखना चाहिए। इसमें पीड़ितों के लिए मुआवज़ा अधिनियम (विक्टिमस कॉम्पेंसेशन एक्ट जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 357ए में सन् 2008 में लाए गए संशोधन के ज़रिए बनाया गया है) और बलात्कार पीड़ितों के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग की मदद और सेवाओं की स्कीमें शामिल हैं।

राजकीय दमन व यौन हिंसा के खिलाफ महिलाएँ

‘राजकीय दमन व यौन हिंसा के खिलाफ महिलाएँ’ अक्टूबर 2009 में गठित एक गैर-अनुदान प्राप्त ज़मीनी प्रयास है। इस अभियान का मकसद है - हमारे शरीर व हमारे समाज पर हो रही हिंसा को खत्म करना। हमारा नेटवर्क पूरे देश में फैला हुआ है और इसमें शामिल हम औरतें उनके राजनीतिक परिपाटियों, जन संगठनों, नारी संगठनों, छात्र व युवा संगठनों, नागरिक अधिकार संगठनों एवं व्यक्तिगत स्तर पर हिंसा व दमन के खिलाफ सक्रिय हैं। हम हर प्रकार के राजकीय दमन का विरोध करते हैं और औरतों व लड़कियों के विरुद्ध किसी भी अपराधी/अपराधियों द्वारा की जा रही यौन हिंसा के खिलाफ हैं।